दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

सि.वि.(मु.) 355/2022 और सि.वि.आ. 18842/2022, सि.वि.आ. 33578/2022

वि.प्रति. के माध्यम से श्री अनिल कुमार गुप्ता (मृतक) .... वादीगण

द्वारा : श्री अरविंद नायर, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री मयंक रुस्तगी, श्री सिद्धांत नाथ, श्री अक्षय जोशी, श्री समासाची रावत और श्री विपुल कुमार शर्मा, अधिवक्तागण

बनाम

श्रीमती निशा शर्मा ..... प्रतिवादी

दवारा : श्री राजेश भाटी, श्री हेमंत कक्कड़, श्री शिवम और श्री नवीन ठाकुर, अधिवक्तागण

सि.वि.(मु.) 356/2022 और सि.वि.आ. 18843/2022, सि.वि.आ.18844/2022, सि.वि.आ. 18845/2022

अपने विधिक प्रतिनिधि श्री अक्षय गुप्ता के माध्यम से श्री अनिल कुमार गुप्ता (मृतक) .... वादीगण

द्वारा : श्री अरविंद नायर, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री मयंक रुस्तगी, श्री सिद्धांत नाथ, श्री अक्षय

जोशी, श्री समासाची रावत और श्री विपुल कुमार शर्मा, अधिवक्तागण

बनाम

श्रीमती निशा शर्मा और अन्य ..... प्रतिवादी

द्वारा : श्री राजेश भाटी, श्री हेमंत कक्कड़, श्री शिवम और श्री नवीन ठाकुर, अधिवक्तागण

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति श्री सी. हरि शंकर

<u>निर्णय</u>

03.07.2023

<u>सि.वि.(मु.) 355/2022</u>

वाद

1. माधो प्रसाद कपूर (यहाँ प्रत्यर्थी 2 और इसके बाद, "माधो" के रूप में संदर्भित) ने दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 ("दि.कि.नि. अधिनियम") की धारा 14(1)1 के प्रावधानों के धारा (ख) के तहत, विद्वान अतिरिक्त किराया नियंत्रक ("विद्वान अति.कि.नि") के समक्ष बेदखली याचिका ई-27/08/95 दायर की, जिसमें आरोप लगाया गया कि हरबंस लाल मेहरा के विधिक उत्तराधिकारियों, जिन्हें 470,

चाँदनी चौक, दिल्ली 110006 का परिसर (इसके बाद, "किराये पर दिया गया परिसर") किराए पर दिया गया था, ने अवैध रूप से किराए पर दिए गए परिसर को उप-किराये पर दे दिया था।

2. <u>पक्षकारों का परिचय</u> : हरबंस लाल मेहरा के **विधिक** उत्तराधिकारियों को विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष प्रत्यर्थीगण 1 से 5 के रूप में पक्षकार बनाया गया था। उनमें से, प्रत्यर्थी 5 की मृत्यु हो चुकी है, और विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष प्रत्यर्थीगण 1 से 4 को वर्तमान याचिका में प्रत्यर्थीगण 3 से 6 के रूप में पक्षकार बनाया गया है।

---

14. बेदखली के खिलाफ़ किरायेदार की सुरक्षा। -

1. किसी भी अन्य विधि या संविदा में निहित किसी भी विपरीत बात के बावजूद, किसी भी न्यायालय या नियंत्रक द्वारा किरायेदार के खिलाफ़ मकान मालिक के पक्ष में किसी भी परिसर के कब्ज़े के प्रत्युद्धरण के लिए कोई आदेश या डिक्री नहीं दी जाएगी :

   बशर्ते कि नियंत्रक, निर्धारित तरीके से किए गए आवेदन पर, केवल निम्नलिखित में से एक या अधिक आधारों पर परिसर के कब्ज़े के प्रत्युद्धरण के लिए आदेश दे सकता है, अर्थात् :–

   *****

   (ख) कि किरायेदार ने 9 जून 1952 को या उसके बाद, मकान मालिक की लिखित सहमति प्राप्त किए बिना पूरे परिसर या उसके किसी भाग को उप-किरायेदारी पर दे दिया है, सौंपा है या अन्यथा कब्ज़ा छोड़ दिया है;

अनिल कुमार गुप्ता, कथित रूप से गैरकानूनी उप-किरायेदार, जो विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष प्रत्यर्थी 6 था, ने याचिकाकर्ता के रूप में वर्तमान याचिका दायर की है। बेदखली याचिका दायर करने वाले याचिकाकर्ता माधो को औपचारिक रूप से प्रत्यर्थी 2 के रूप में शामिल किया गया है, हालाँकि किराया नियंत्रण अधिकरण ("विद्वान कि.नि.अधि.") के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान ही उसकी मृत्यु हो गई थी, जिनके निर्णय के **खिलाफ़** वर्तमान याचिका दायर की गई है। इसलिए निशा शर्मा, जिसके नाम पर किराये पर दिया गया परिसर प्रत्यर्थी 2 द्वारा हस्तांतरित किया था, को प्रत्यर्थी 1 के रूप में पक्षकार बनाया गया है। इसे सारणीबद्ध तरीके से इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

नाम	**पात्र/स्थिति**	**विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष**	**इस न्यायालय के समक्ष**
माधो	किराये पर दिए गए परिसर का मालिक	याचिकाकर्ता	प्रत्यर्थी 2
निशा शर्मा	किराये पर दिए गए परिसर की हस्तांतरिती	कोई पक्ष नहीं है; विद्वान कि.नि.अधि के समक्ष प्रत्यर्थी 2	प्रत्यर्थी 1
पी.के. मेहरा	हरबंस लाल मेहरा के बच्चे	प्रत्यर्थी 1	प्रत्यर्थी 3
जे.के. मेहरा		प्रत्यर्थी 2	प्रत्यर्थी 4

एस.के. मेहरा		प्रत्यर्थी 3	प्रत्यर्थी 5
मीना भसीन		प्रत्यर्थी 4	प्रत्यर्थी 6
रजनी मल्होत्रा		प्रत्यर्थी 5	प्रत्यर्थी 7
अनिल कुमार गुप्ता	कथित उप-किरायेदार	प्रत्यर्थी 6	याचिकाकर्ता (विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से)

सुविधा के लिए, मैं इस न्यायालय के समक्ष पक्षों की स्थिति या जैसा अवसर के अनुसार उचित होगा, उनके नामों का उल्लेख करूँगा।

2.1 गौरतलब है कि प्रत्यर्थीगण 3 से 7 (जो विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष प्रत्यर्थीगण 1 से 5 थे) ने कभी भी विद्वान अति.कि.नि. या विद्वान कि.नि.अधि. के समक्ष कार्यवाही का विरोध नहीं किया और दोनों चरणों में एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी। न ही उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही का विरोध किया है।

3. माधो का तर्क यह था कि हरबंस लाल मेहरा (प्रतिवादी 3 से 7) के विधिक उत्तराधिकारियों ने किराये पर दिए गए परिसर को याचिकाकर्ता को उसकी सहमति या अधिकार के बिना और उसकी पीठ पीछे उप-किरायेदारी पर दे दिया था।

तदनुसार, माधो ने बेदखली याचिका ई-27/08/95 के माध्यम से प्रत्यर्थीगण 3 से 7 और याचिकाकर्ता को किराये पर दिए गए परिसर से बेदखल करने की माँग की।

4. बेदखली याचिका ई-27/08/95 को विद्वान अति.कि.नि. ने 26 अक्टूबर 2012 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया था। कि.नि.अधि. 30244/2016, माधो और निशा शर्मा द्वारा उक्त निर्णय के खिलाफ़ की गई अपील है, जिसे 6 जनवरी 2022 के निर्णय के तहत विद्वान कि.नि.अधि. द्वारा अनुमति दी गई है।

5. विद्वान कि.नि.अधि. के दिनांक 6 जनवरी 2022 के उक्त निर्णय को याचिकाकर्ता द्वारा अपने कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर वर्तमान याचिका के ज़रिए चुनौती दी गई है।

अधीनस्थ विद्वान न्यायालयों के समक्ष तथ्य और कार्यवाहियाँ

6. माधो ने अपनी बेदखली याचिका में तर्क दिया कि उसके पिता हरध्यान सिंह चांदीवाला ने, जिससे उसे मालिकाना हक हासिल हुआ था, किराये पर दिए गए परिसर को 1937 में या उसके आसपास हरबंस लाल मेहरा को ₹ 160/- के मासिक किराये पर किराये पर दे दिया था, और हरबंस लाल मेहरा की मृत्यु के बाद, उसके **विधिक** उत्तराधिकारियों, बेदखली याचिका में प्रत्यर्थीगण 1-5, ने किराये पर दिए गए परिसर को **विधिविरूद्ध ढंग से** याचिकाकर्ता को उप-किराये पर दे दिया। ऐसे में, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 14(1)(ख) का अवलंब लेते हुए,

माधो ने हरबंस लाल मेहरा और याचिकाकर्ता के **विधिक** उत्तराधिकारियों को किराये पर दिए गए परिसर से बेदखल करने की माँग की।

7. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थीगण 3 से 7 ने मेरे समक्ष बेदखली याचिका का विरोध नहीं किया और उन पर एकपक्षीय कार्यवाही की गई। बेदखली याचिका का प्रत्यर्थी 6 के रूप में अकेले याचिकाकर्ता द्वारा विरोध किया गया था।

8. बेदखली याचिका के जवाब में, याचिकाकर्ता (उसमें **प्रत्यर्थी** 6 के रूप में) ने इन आरोपों से स्पष्ट रूप से इनकार किया कि किराये पर दिए गए परिसर को हरबंस लाल मेहरा के **विधिक** उत्तराधिकारियों द्वारा उसे उप-किरायेदारी पर दिया गया था। इसके विपरीत, उसने तर्क दिया कि हरबंस लाल मेहरा ने दिसंबर 1987 में किसी समय अपनी किरायेदारी का परित्याग कर दिया था, जिसके बाद माधो ने याचिकाकर्ता के पिता राज कुमार गुप्ता को हरबंस लाल मेहरा के स्थान पर किरायेदार के रूप में रखा था। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता के पिता राज कुमार गुप्ता माधो के प्रत्यक्ष किरायेदार थे और उनकी मृत्यु के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता किरायेदारी के उत्तराधिकारी बने थे।

9. साथ ही, याचिकाकर्ता ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि माधो और राज कुमार गुप्ता के बीच कोई किराया **अनुबंध** नहीं हुआ था और माधो द्वारा किराये

पर दिए गए परिसर के संबंध में किराये के भुगतान की पावती के रूप में राज कुमार गुप्ता या स्वयं उसके द्वारा किराये की कोई रसीद जारी नहीं की गई थी। बल्कि, याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि, राज कुमार गुप्ता के साथ-साथ स्वयं उसके द्वारा माधो से किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में किराये के भुगतान को स्वीकार करते हुए किराया रसीद जारी करने के लिए कई अनुरोध किए गए थे, लेकिन, प्रत्येक बार, माधो ने टाल-मटोल दिया। याचिकाकर्ता ने ज़ोर दिया कि माधो द्वारा किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में राज कुमार गुप्ता को किरायेदार के रूप में स्वीकार करते समय, एक वर्ष के अग्रिम किराये के रूप में ₹ 9,600/-, और प्रतिदेय प्रतिभूति के रूप में ₹ 50,000/- राज कुमार गुप्ता द्वारा दिए गए थे एवं माधो द्वारा स्वीकार किए गए थे। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया कि इन राशियों के संबंध में भी माधो द्वारा कोई रसीद नहीं दी गई थी और उक्त भुगतान की पावती देने वाली कोई रसीद या अन्य दस्तावेज माधो द्वारा नहीं दिया गया था। याचिकाकर्ता ने ज़ोर दिया कि, माधो द्वारा किराये पर दिए गए परिसर में किरायेदार के रूप में शामिल किए जाने के बाद, राज कुमार गुप्ता ने जनवरी 1988 के दूसरे सप्ताह में मैसर्स विशाल मावा भंडार के नाम से किराये पर दिए गए परिसर से खोया, पनीर का थोक व्यवसाय और मिठाइयों की खुदरा बिक्री शुरू की। याचिकाकर्ता द्वारा इस बात पर भी ज़ोर दिया गया कि किराये पर दिए गए परिसर के सामने के हिस्से में एक चबूतरा है, जो दिल्ली

नगर निगम (दि.न.नि.) की संपत्ति है, जिसके उपयोग के लिए राज कुमार गुप्ता दि.न.नि. को प्रत्येक वर्ष ₹ 1,344/- का भुगतान कर रहा था।

10. अभिवचनों के पूरे होने के परिणामस्वरूप, साक्ष्य दर्ज किए गए। माधो ने केवल सह.सा.1 के रूप में अपने साक्ष्य दिया, जबकि याचिकाकर्ता ने छह साक्षियों को प्र.सा.1 से प्र.सा.6 के रूप में उद्धृत किया, जिसमें से याचिकाकर्ता अनिल कुमार गुप्ता ने स्वयं प्र.सा.1 के रूप में साक्ष्य प्रस्तुत किए।

11. पक्षकारों द्वारा साक्ष्य के रूप में कुछ दस्तावेज़ भी प्रस्तुत किए गए। प्रासंगिक दस्तावेज़ों का संदर्भ इसके बाद दिया जाएगा।

12. सह.सा.1 के रूप में गवाही देते हुए, माधो ने किराये पर दिए गए परिसर के सामने दि.न.नि. की संपत्ति वाले किसी भी चबूतरे की मौजूदगी से इनकार किया। उसने इस सुझाव से भी इनकार किया कि उसने जनवरी 1988 में राज कुमार गुप्ता को परिसर किराये पर दे दिया था या उसने राज कुमार गुप्ता से सुरक्षा या अग्रिम किराये के लिए कोई राशि स्वीकार की थी। उसने गवाही दी कि जनवरी 1988 तक हरबंस लाल मेहरा किराये पर दिए गए परिसर से उसका आभूषण का व्यवसाय चला रहा था। हालाँकि, उसने स्वीकार किया कि अक्टूबर 1994 से पहले उसने याचिकाकर्ता को कोई नोटिस नहीं दिया था या विधिविरूद्ध उप-किरायेदार के रूप में उसके खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की थी। उसने आगे कहा

कि 1988-89 की अवधि के दौरान किराया, हरबंस लाल मेहरा के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा नकद में भरा जा रहा था। उसने यह भी स्वीकार किया कि, 1991 से, किराये पर दिए गए परिसर का उपयोग खोया, पनीर और मिठाइयाँ बेचने के लिए किया जा रहा था। उसने इस आरोप से इनकार किया कि उसने याचिकाकर्ता से किराया लिया था और इस संबंध में अनुरोध के बावजूद किराये की रसीदें जारी करने से इनकार कर दिया था।

13. प्र.सा.1 के रूप में गवाही देते हुए, याचिकाकर्ता बेदखली याचिका के जवाब के रूप में दायर लिखित बयान में अपने द्वारा अपनाए गए मत पर बना रहा। उसने प्रस्तुत किया कि, माधो के साथ राज कुमार गुप्ता की प्रत्यक्ष किरायेदारी की शुरुआत के बाद से, किराये पर दिए गए परिसर से उनके बीच पत्राचार हो रहा था। उसने अपने तर्क के समर्थन में कुछ आकलन आदेशों, बाट और माप विभाग से एक चालान और किराये पर दिए गए परिसर के सामने चबूतरे के लिए दि.न.नि. को *तहबाज़ारी* शुल्क के भुगतान की रसीद का संदर्भ दिया। हालाँकि, उसने स्वीकार किया कि उन्होंने किसी भी किराए की रसीद के लिए माधो को कोई पत्र जारी नहीं किया था, किसी भी किराये के अनुबंध के निष्पादन की माँग नहीं की थी, या उस संबंध में दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 26 के तहत कोई याचिका दायर नहीं की थी। उसने यह भी स्वीकार किया कि, 1987 तक, हरबंस लाल मेहरा वास्तव में किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में

किरायेदार थे। उसने अपने द्वारा भरे गए आयकर रिटर्न पर भरोसा करने की माँग की, जो उसके अनुसार, 1995 के बाद किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में माधो को किए गए किराये के भुगतान को दर्शाता है। जब उससे पूछा गया कि दि.न.नि. ने हरबंस लाल दौलत राम के नाम पर 24 मार्च 1989 को *तहबाज़ारी* (प्रद. प्र.सा.1-क6) रसीद क्यों जारी की थी, तो उसने संस्वीकार किया कि उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

14. प्र.सा.2 और प्र.सा.3 ने प्र.सा.1 के रूप में याचिकाकर्ता के मत का समर्थन किया। उन्होंने दावा किया कि वे याचिकाकर्ता को लंबे समय से जानते हैं और हरबंस लाल मेहरा द्वारा किरायेदारी का परित्याग और उसके बाद माधो द्वारा राज कुमार गुप्ता को किराये पर दिए गए परिसर में किरायेदार के रूप में रखना, दिसंबर 1987 के दूसरे या तीसरे सप्ताह में उनकी उपस्थिति में ही हुआ था। उसने यह भी गवाही दी कि ₹ 9,600/- का वार्षिक अग्रिम किराया और सुरक्षा राशि के रूप में ₹ 50,000/- का भुगतान उसके और डी.के रस्तोगी सहित विभिन्न व्यक्तियों की उपस्थिति में हुआ था, जिसके बाद किराये पर दिए गए परिसर का अभिधारण माधो ने राज कुमार गुप्ता को सौंप दिया था। उसने याचिकाकर्ता के इस कथन को भी पृष्ठांकित किया कि राज कुमार गुप्ता और याचिकाकर्ता द्वारा माधो से किराया रसीद जारी करने के लिए कई अनुरोध किए गए, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। प्रतिपरीक्षा के दौरान, प्र.सा.1 ने स्वीकार किया कि माधो ने दुकान

सं. 471-472, चाँदनी चौक के संबंध में उसके खिलाफ़ बेदखली याचिका दायर की थी।

15. बेदखली याचिका ई-27/08/95 को प्रारंभ में 4 जून 2002 के निर्णय के तहत विद्वान अति.कि.नि. द्वारा खारिज कर दिया गया था। उक्त निर्णय को माधो द्वारा अपील में चुनौती दी गई थी और, अपील संख्या 523/2002 में पारित अपीलीय आदेश दिनांक 19 अप्रैल 2007 के तहत, विद्वान कि.नि.अधि. ने विद्वान अति.कि.नि. के 4 जून 2002 के आदेश को अपास्त कर दिया और बेदखली याचिका को नए सिरे से कार्यवाही करने के लिए विद्वान अति.कि.नि. को प्रतिपेषित कर दिया। अन्य बातों के अलावा, विद्वान कि.नि.अधि. द्वारा यह निर्देशित किया गया था कि, उक्त नए सिरे से की जाने वाली कार्यवाही में, हरबंस लाल मेहरा की मृत्यु को 27 अगस्त 1988 के बजाय 27 अप्रैल 1988 माना जाएगा।

16. विद्वान कि.नि.अधि. के निर्णय को याचिकाकर्ता द्वारा सि.वि. (मु.) 1281/2007 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसका निपटान इस न्यायालय द्वारा 13 फ़रवरी 2012 के निम्नलिखित आदेश के माध्यम से किया गया था :

> "कुछ तर्कों के बाद, इस बात पर सहमति हुई कि मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए अति.कि.नि. को वापस प्रतिपेषित करने के

कि.नि.अधि. के आदेश में निहित निर्देशों को संशोधित किया जाएगा। तदनुसार, उन पर नए सिरे से विचार करने के लिए अति.कि.नि. को निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं। इससे कि.नि.अधि. के निर्देशों में संशोधन होगा। नीचे दिए गए दस्तावेज़ के आलोक में अति.कि.नि. द्वारा निर्देशों पर नए सिरे से विचार किया जाएगा।

(i) वाद सं. 74/1982 में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय से अनुमति प्राप्त करने के लिए श्री हरबंस लाल मेहरा द्वारा दायर आवेदन।

(ii) श्रीमती सुशीला मेहरा द्वारा उक्त आवेदन दिनांक 19.07.1988 में हरबंस लाल मेहरा की मृत्यु के बाद उनके प्रतिस्थापन के लिए दिया गया आवेदन।

(iii) हरबंस लाल मेहरा द्वारा छोड़ी गई विल के संबंध में जे.के. मेहरा द्वारा दायर प्रोबेट याचिका, जैसा कि प्रत्यर्थी ने कि.नि.अधि. के समक्ष दायर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 27 के तहत अपने आवेदन में भरोसा किया था और हरबंस लाल मेहरा द्वारा छोड़ी गई विल।

(iv) विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष को दर्ज करेगा कि क्या किरायेदारी अनिल कुमार गुप्ता के पिता राज कुमार गुप्ता के पक्ष में बनाई गई थी। इसके अतिरिक्त, क्या हरबंस लाल मेहरा द्वारा अपने जीवनकाल के दौरान किरायेदारी का कोई परित्याग किया गया था।

(v) दिनांक 25.08.1988 प्रद. सह.सा.1/3 के पत्र पर भी निष्कर्ष निकाला जाएगा, जिसे कथित तौर पर अधिवक्ता पी.एन. तिवारी द्वारा लिखा गया था। इस पत्र पर अति.कि.नि. ने यह निष्कर्ष निकाला था कि यह एक जाली पत्र था; इसे स्वीकृत स्थिति के

आलोक में देखना होगा कि हरबंस लाल मेहरा की मृत्यु 27.04.1988 को हुई थी न कि 27.08.1988 को।

निर्देशों में पहले तीन बिंदु स्वीकृत दस्तावेज़ों से संबंधित हैं।

प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि मामले के निर्णय के लिए एक समयबद्ध सीमा होनी चाहिए क्योंकि मामला बहुत पुराना है और कि.नि.अधि. ने एक समयबद्ध सीमा पर भी विचार किया है और अति.कि.नि. को छह महीने के भीतर मामले का निपटारा करने का निर्देश दिया है, तीन महीने से अधिक समय पहले ही बीत चुका है।

तदनुसार पक्षकारों को 23.02.2012 को अति.कि.नि. के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है, जो आदेश की प्राप्ति की तिथि से आठ महीने की बाहरी सीमा के भीतर मामले को निपटाने का प्रयास करेगा।

इन निर्देशों के साथ याचिका का निपटान किया जाता है।"

17. जिन कार्यवाहियों से वर्तमान याचिका उत्पन्न हुई है, वह सि.वि. (मु) 1281/2007 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13 फ़रवरी 2012 के उपरोक्त आदेश के परिणामस्वरूप नए सिरे से की गई कार्यवाहियाँ हैं।

<u>विद्वान अति.कि.नि. का दिनांक 26 अक्टूबर 2012 का निर्णय</u>

18. विद्वान अति.कि.नि. ने अभिनिर्धारित किया कि माधो हरबंस लाल मेहरा या उसके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा याचिकाकर्ता को किराये पर दिए गए परिसर को उप-किरायेदारी पर देने के तथ्य को स्थापित करने में विफल रहा, या याचिकाकर्ता

के इस मत को खारिज करने में भी विफल रहा कि किराये पर दिए गए परिसर को माधो ने प्रत्यक्ष रूप से उसके पिता राज कुमार गुप्ता को किराये पर दिया था।

19. उक्त निष्कर्ष पर पहुँचने में, विद्वान अति.कि.नि. निम्नलिखित तथ्यों/तर्कों के आधार पर आगे बढ़े :

(i) यह निर्विवाद था कि हरबंस लाल मेहरा के पास जनवरी 1988 तक माधो के किरायेदार के रूप में किराये पर दिए गए परिसर का कब्ज़ा था और 1988-89 से राज कुमार गुप्ता और याचिकाकर्ता के पास किराये पर दिए गए परिसर का कब्ज़ा था। इस प्रकार, इस बात की जाँच करने की आवश्यकता थी कि क्या याचिकाकर्ता किराये पर दिए गए परिसर पर हरबंस लाल मेहरा या उसके विधिक प्रतिनिधि के उप-किरायेदार के रूप में आया था, या माधो के प्रत्यक्ष किरायेदार के रूप में आया था।

(ii) प्रतिपरीक्षा के दौरान, माधो, प्र.सा.1 के रूप में गवाही देते हुए, स्पष्ट रूप से यह बताने में विफल रहा कि क्या हरबंस लाल मेहरा का आभूषण का व्यवसाय 1984 में या उससे पहले बंद कर दिया गया था।

(iii) हालाँकि उसने ज़ोर दिया कि उसके द्वारा हरबंस लाल मेहरा के विधिक प्रतिनिधियों को उप-किरायेदारी के संबंध में एक नोटिस जारी किया गया था, माधो उक्त नोटिस को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने में विफल रहा।

(iv) माधो यह नहीं बता सका कि उसके द्वारा याचिकाकर्ता को उप-किरायेदारी के संबंध में कोई नोटिस क्यों जारी नहीं किया गया।

(v) माधो यह बताने में भी असफल रहा कि 1989 से अक्टूबर 1994 तक, उसी इमारत में रहने के बावजूद, उसने याचिकाकर्ता के खिलाफ़ विधिविरूद्ध उप-किरायेदार के रूप में रहने पर कार्रवाई क्यों नहीं की।

(vi) याचिकाकर्ता ने साक्ष्य में गवाही दी कि

(क) राज कुमार गुप्ता को जनवरी 1988 में हरबंस लाल मेहरा की पूर्व सहमति और जानकारी के साथ माधो द्वारा किरायेदार के रूप में रखा गया था, जिसने अपने किरायेदारी अधिकारों को छोड़ने की इच्छा व्यक्त की थी,

(ख) राज कुमार गुप्ता, रमेश कुमार यादव, याचिकाकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में माधो के आवास पर किरायेदारी की एक मौखिक संविदा निष्पादित की गई थी,

(ग) उस समय, ₹ 9,600/- का अग्रिम वार्षिक किराया, ₹ 50,000/- की सुरक्षा राशि के साथ माधो को नकद भुगतान किया गया था और

(घ) हालाँकि, माधो ने उक्त राशि की प्राप्ति की कोई लिखित पावती नहीं दी।

(vii) प्र.सा.2 और प्र.सा.3 ने याचिकाकर्ता की प्र.सा.1 के रूप में गवाही की संपुष्टि की, और दावा किया कि जब उपरोक्त लेनदेन हुआ था तब वे उपस्थित थे।

(viii) हालाँकि प्र.सा.2 का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं हो सकता था क्योंकि वह एक हितबद्ध साक्षी था, प्र.सा.3 को कार्यवाहियों में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

(ix) इसलिए, पक्षकारों द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य के आधार पर, ऐसा प्रतीत होता है कि, हरबंस लाल मेहरा द्वारा किरायेदारी के परित्याग के बाद, माधो ने जनवरी 1988 में राज कुमार गुप्ता को किराये पर दिए गए परिसर में किरायेदार के रूप में रखा। दिसंबर 1987 से अक्टूबर 1988 की अवधि के लिए किराये का भुगतान करने के लिए हरबंस लाल मेहरा के वकील द्वारा माधो को संबोधित 25 अगस्त 1988 के पत्र के संबंध में, जिससे पता चलता है कि हरबंस लाल मेहरा अक्टूबर 1988 तक किराये पर दिए गए परिसर के किरायेदार थे, माधो के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति में इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं था कि ऐसा पत्र क्यों भेजा गया था, जबकि उसी समय हरबंस लाल मेहरा की विधवा इस न्यायालय से किराये पर दिए गए परिसर को उप-किरायेदारी पर देने की अनुमति माँग रही थी।

(x) याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष हरबंस लाल मेहरा द्वारा दायर 10 जुलाई 1987 के एक आवेदन पर भी भरोसा किया, जिसे माधो की बहन द्वारा माधो और उसके किराये पर दिए गए परिसर के अन्य सह-मालिकों के खिलाफ़ वाद 74/1982 में दायर किया गया था, जिसके तहत हरबंस लाल मेहरा ने किराये पर लिए गए परिसर में कमीशन के आधार पर व्यापार करने के लिए किसी तीसरे पक्ष के साथ जुड़ने या उसे किराए पर देने की अनुमति माँगी थी। यह पत्र माधो की सहायता नहीं कर सकता था क्योंकि 10 जुलाई 1987 को, याचिकाकर्ता अभी तक इस मामले में शामिल नहीं हुआ था।

(xi) याचिकाकर्ता ने उपरोक्त वाद 74/1982 में हरबंस लाल मेहरा की पत्नी सुशीला मेहरा द्वारा दायर 19 जुलाई 1988 के एक उत्तरवर्ती आवेदन पर भी भरोसा किया, जिसमें उसने वाद में हरबंस लाल मेहरा द्वारा दायर 10 जुलाई 1987 के आवेदन में हरबंस लाल मेहरा और इस प्रकार, आवेदन में हरबंस लाल मेहरा द्वारा की गई प्रार्थनाओं के स्थान पर अपने प्रतिस्थापन की माँग की थी। माधो ने तर्क दिया कि इन आवेदनों से संकेत मिलता है कि, जनवरी 1988 के बाद भी, न तो हरबंस लाल मेहरा ने, न ही उसके विधिक प्रतिनिधियों ने, किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में किरायेदारी के अधिकारों का परित्याग किया था। यह पाया गया कि इस

आवेदन से भी माधो को कोई सहायता नहीं मिली। विद्वान अति.कि.नि. ने देखा कि, हालाँकि आवेदन से संकेत मिलता है कि सुशीला मेहरा का उसको विरासत में मिले किरायेदारी अधिकारों का उपभोग करने में हित था, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि वह हरबंस लाल मेहरा, माधो और याचिकाकर्ता के बीच हुए लेनदेन से अनजान थी, जिसके तहत याचिकाकर्ता को जनवरी 1988 में किराये पर दिए गए परिसर का कब्ज़ा प्राप्त हुआ था। इस धारणा को इस तथ्य से बल मिला कि जनवरी 1988 के बाद न तो हरबंस लाल मेहरा, न ही उसकी पत्नी और न ही उसके किसी अन्य विधिक प्रतिनिधि ने किरायेदारी अधिकारों का दावा करने, या किराये पर दिए गए परिसर में याचिकाकर्ता के कब्ज़े को चुनौती देने के लिए कोई कदम उठाया था।

(xii) माधो ने हरबंस लाल मेहरा के बेटे और उसकी वसीयत के निष्पादक जे.के. मेहरा द्वारा दायर प्रोबेट मामले 31/88 पर भी भरोसा किया, जिसमें किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में हरबंस लाल मेहरा के किरायेदारी अधिकारों का संदर्भ दिया गया था। माधो के अनुसार, इससे भी यह संकेत मिलता है कि हरबंस लाल मेहरा ने अपने किरायेदारी के अधिकारों का परित्याग नहीं किया है। विद्वान अति.कि.नि. इस दस्तावेज़ से भी प्रभावित नहीं हुए थे। उन्होंने माना कि हरबंस लाल मेहरा की 22 अप्रैल 1988 की

विल किराये पर दिए गए परिसर में हरबंस लाल मेहरा के किरायेदारी अधिकारों के संबंध में मौन थी। इससे याचिकाकर्ता के मामले को बल मिला कि हरबंस लाल मेहरा ने जनवरी 1988 में अपने किरायेदारी अधिकारों का परित्याग कर दिया था। इसके मद्देनज़र, जे.के. मेहरा द्वारा दायर प्रोबेट याचिका में हरबंस लाल मेहरा के किरायेदारी अधिकारों के संदर्भ को अनुचित महत्व नहीं दिया जा सकता है।

(xiii) यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि हरबंस लाल मेहरा के विधिक प्रतिनिधियों ने जनवरी 1988 के बाद किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में कोई रुचि दिखाई या किरायेदारी के अधिकारों का उपभोग किया।

(xiv) इसमें कोई विवाद नहीं है कि माधो ने 1988 के बाद हरबंस लाल मेहरा से किराये की कोई माँग नहीं की। न ही माधो ने यह तर्क देने की कोशिश की कि, 1988 के बाद, हरबंस लाल मेहरा, या उसके विधिक प्रतिनिधि, माधो को किराया दे रहे थे। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं था कि 1988 से 1994 तक 6 वर्षों की अवधि के लिए, हरबंस लाल मेहरा या उसके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा माधो को कोई किराया क्यों नहीं दिया गया, यदि वास्तव में, वे किराये पर दिए गए परिसर की किरायेदारी को जारी रखे हुए थे। अभिलेख पर ऐसा कोई दस्तावेज़ नहीं था जो यह दर्शाता

हो कि माधो द्वारा किराये पर दिए गए परिसर को कथित तौर पर उप-किरायेदारी पर देने का विरोध करने के लिए कोई प्रयास किया गया था।

20. उपरोक्त तथ्यात्मक टिप्पणियों के आधार पर, विद्वान अति.कि.नि. ने संपत्ति का अंतरण अधिनियम, 1882 ("सं.अ. अधिनियम") की धारा 111(च)3 का अवलंब लिया, ताकि यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि विधि के परिचालन द्वारा किरायेदारी के विवक्षित परित्याग का, पक्षकारों के असंदिग्ध आचरण से अनुमान लगाया जा सकता है, जो मूल किरायेदारी की निरंतरता के साथ असंगत था। हरबंस लाल मेहरा के विधिक प्रतिनिधियों के, कम से कम अगस्त 1988 के बाद के आचरण से यह अभिनिर्धारित किया गया कि उन्होंने किराये पर लिए गए परिसर के संबंध में किरायेदारी के अपने अधिकारों का परित्याग कर दिया था। इस संबंध में, ***नौरतमल बनाम मोहनलाल*** मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया था।

---

111. पट्टे का निर्धारण. - अचल संपत्ति का पट्टा, इसके द्वारा निर्धारित होता है -

(च) विवक्षित परित्याग द्वारा;

21. इन परिस्थितियों में, और विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, विद्वान अति.कि.नि. ने अभिनिर्धारित किया कि, माधो द्वारा अपने इस दावे, कि हरबंस

लाल मेहरा, या उसके विधिक प्रतिनिधियों ने किराये पर लिए गए परिसर को किराये पर दे दिया था, को बल देने के लिए प्रस्तुत किए गए किसी भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में, उप-किरायेदारी पर देने के आरोप को बनाए नहीं रखा जा सकता। यह अभिनिर्धारित किया गया कि केवल यह तथ्य कि याचिकाकर्ता ने किराये पर दिए गए परिसर पर कब्ज़ा कर लिया था, उप-किराये पर देने के निष्कर्ष को उचित ठहराने के लिए अपर्याप्त था।

22. इस प्रकार, विद्वान अति.कि.नि. ने बेदखली मामले सं. ई-27/08/95 को यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि माधो याचिकाकर्ता को किराये पर दिए गए परिसर को उप-किराये पर देने के आरोप को स्थापित करने में विफल रहा था और इसलिए, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 41(ख) के तहत बेदखली का निर्देश देने का कोई मामला नहीं बनता था।

23. अपने जीवनकाल के दौरान, माधो ने 10 जनवरी 2005 को एक विक्रय विलेख के माध्यम से किराये पर दिए गए परिसर को निशा शर्मा को सौंपा/हस्तांतरित कर दिया, जो इस न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी 1 है। इसलिए, निशा शर्मा ने विद्वान अति.कि.नि. के 26 अक्टूबर 2012 के उपरोक्त निर्णय के खिलाफ़ विद्वान कि.नि.अधि. में अपील की।

24. 6 जनवरी 2022 के आक्षेपित निर्णय द्वारा, विद्वान कि.नि.अधि. ने उक्त अपील की अनुमति दी है, विद्वान अति.कि.नि. के निर्णय को उलट दिया है और बेदखली याचिका ई-27/08/95 को अनुमति दी है।

<u>विद्वान कि.नि.अधि. के निष्कर्ष</u>

25. चूँकि तथ्यों पर कोई गंभीर विवाद नहीं था, इसलिए विद्वान कि.नि.अधि. के आक्षेपित निर्णय को संक्षेप में प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। यह बताना पर्याप्त है कि विद्वान कि.नि.अधि. ने विद्वान अति.कि.नि. के 26 अक्टूबर 2012 के निर्णय को गुणागुण के आधार पर पूरी तरह से अरक्षणीय माना। विद्वान कि.नि.अधि. ने प्रारंभ में, आक्षेपित निर्णय के निम्नलिखित पैराग्राफ़ में, उप-किरायेदारी की मूल सामग्री को निर्धारित किया, जैसा कि दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 14(1)(ख) के साथ सहपठित ***सेलिना कोएल्हो परेरा बनाम उल्हास महाबलेश्वर खोलाकर*** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा परिकल्पित किया गया था:

> "15. ... अब, जैसा कि संबंधित मामले में चर्चा की गई है, यह विधि का एक स्थापित प्रस्ताव है कि "उप-किरायेदारी" का गठन करने के लिए किरायेदार द्वारा दूसरों को शामिल करने या बाहर करने का अधिकार छोड़ने के अर्थ में विधिक कब्ज़े का विभाजन करना होगा, जो हमेशा तथ्य का प्रश्न होता है। यह विधि का एक स्थापित प्रस्ताव है कि दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 14(1)(ख) में "उप-किराये पर देना, "कब्ज़े का विभाजन करना" और साथ ही "समनुदेशन" जैसी अभिव्यक्तियाँ किसी न किसी विचार के लिए किराये पर दिए गए परिसर के विशेष कब्ज़े और नियंत्रण को दूसरे को सौंपने का संकेत देते हैं। 18. इस

विषय पर कई मामलों के विधि की जाँच करने के बाद, ***सेलिना कोएल्हो परेरा*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस विषय पर विधि को दोहराया और संक्षेप में बताया :

"25. उपरोक्त निर्णयों से जो विधिक स्थिति उभरती है उसे संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

(i) किराया नियंत्रण विधियों के तहत बेदखली के आधार के रूप में उप-किरायेदारी पर देने के को दोषपूर्ण साबित करने के लिए, दो तत्वों को स्थापित करना आवश्यक है। (पहला) किरायेदार द्वारा किरायेदारी के कब्ज़े का विभाजन करना या उसके हिस्से को कब्ज़े के विशेष अधिकार वाले किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में छोड़ना, और (दूसरे) कि कब्ज़े की इस तरह की हिस्सेदारी मकान मालिक की सहमति के बिना और मुआवज़े या किराये के बदले में की गई है।

(ii) किसी किरायेदार द्वारा व्यवसाय या पेशे में किसी भागीदार या भागीदारों को शामिल करना स्वयं उप-किरायेदारी पर देने के समान नहीं है। हालाँकि, यदि ऐसी भागीदारी का उद्देश्य दिखावा करना है और भागीदारी का विलेख उप-किरायेदारी के वास्तविक लेन-देन को छिपाने के लिए रचा गया है, तो न्यायालय किरायेदार द्वारा किए गए लेन-देन की वास्तविक प्रकृति का पता लगाने के लिए भागीदारी का पर्दा फ़ाश कर सकता है।

(iii) किरायेदार और कथित उप-किरायेदार के बीच भागीदारी विलेख या किसी अन्य रूप में दिखावटी लेनदेन का मौजूद होना मकान मालिक को साक्ष्य देकर या प्रतिपरीक्षा के माध्यम से, किरायेदार द्वारा किसी तीसरे व्यक्ति के पक्ष में किराये पर दिए गए परिसर को उप-किराये पर देने या कब्ज़ा छोड़ने का मामला बनाने हेतु सामग्री पेश करने और परिस्थितियों को अभिलेख पर लाने से नहीं रोकेगा,

(iv) यदि किरायेदार भागीदारी व्यवसाय से सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ है और किराये पर दिए गए परिसर पर नियंत्रण अपने पास रखता है, चाहे वह भागीदारों के साथ भी हो, तो यह नहीं कहा जा सकता कि किरायेदार ने कब्ज़ा छोड़ दिया है

(v) उप-किरायेदारी को साबित करने का प्रारंभिक भार मकान मालिक पर होता है, लेकिन एक बार जब वह यह स्थापित करने में सक्षम हो जाता है कि परिसर पर किसी तीसरे पक्ष का विशेष कब्ज़ा है और किरायेदार के पास किराये पर दिए गए परिसर का कोई विधिक कब्ज़ा नहीं है, तो ऐसे तीसरे पक्ष के कब्ज़े की प्रकृति को साबित करने की ज़िम्मेदारी किरायेदार पर आ जाती है कि उसके (किरायेदार) पास ही किराये पर दिए गए परिसर का कानूनी कब्ज़ा है।

(vi) दूसरे शब्दों में, मकान मालिक पर पड़ने वाला प्रारंभिक भार इस तथ्य का प्रथम दृष्टया प्रमाण जोड़कर समाप्त कर दिया जाएगा कि किरायेदार के अलावा किसी अन्य पक्ष का परिसर पर विशेष कब्जा था। तब उप-किरायेदारी पर देने का अनुमान लगाया जा सकता है और जब तक इसका खंडन न किया जाए, यह सबूत के समान होगा।"

16. बिंदु संख्या (i), (v) और (vi) के माध्यम से उपरोक्त मापदंडों पर ज़ोर देते हुए, मकान मालिक को दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 14 (1) (ख) के तहत एक याचिका में सफल होने के लिए निम्नलिखित आवश्यक शर्तों को साबित करना अनिवार्य है-

(i) किरायेदार ने पूरे परिसर या उसके कुछ हिस्से को उप-किरायेदारी पर दे दिया, उसे सौंप दिया या उससे अलग हो गया, अर्थात उप-किरायेदार या समनुदेशिती के पास पूरी संपत्ति या उसके कुछ हिस्से का विशेष कब्ज़ा था।

(ii) किरायेदार द्वारा मकान मालिक से लिखित में कोई सहमति नहीं ली गई थी।

17. इस प्रकार, बेदखली के इस आधार का मुख्य तत्व किसी अजनबी का मकान मालिक की सहमति के बिना किराये पर दिए गए परिसर पर पूर्ण या आंशिक रूप से कब्ज़ा करना है। "कब्ज़े को पूर्णतः या आंशिक रूप से अलग करने" की उपधारणा तीनों मापदंडों में निहित है। किराये पर दिए गए परिसर में किसी अजनबी की मौजूदगी और किराये पर दिए गए परिसर के पूरे या कुछ हिस्से पर उसका विशेष कब्ज़ा होने को साबित करने का प्राथमिक दायित्व मकान मालिक पर है। एक बार जब मकान मालिक ने यह साबित कर दिया कि किरायेदार को किरायेदारी परिसर से बाहर रखा गया है, और यह दिखाने के लिए बुनियादी तथ्य भी हैं कि किरायेदार किराये पर दिए गए परिसर से बाहर है या उसने पूर्ण या उसके हिस्से का "पुनः कब्ज़ा करने का अधिकार" खो दिया है, तो उप-किरायेदारी पर देने, सौंपने या विभाजन करने का अनुमान उत्पन्न होता है, जिससे किराये पर दिए गए परिसर में अजनबी की विधिक स्थिति को समझाने की ज़िम्मेदारी किरायेदार पर आ जाती है।"

26. उपर्युक्त के बाद, विद्वान कि.नि.अधि. ने इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए निम्नलिखित कारण बताए कि विद्वान अति.कि.नि. का निर्णय गुणागुण के आधार पर बनाए रखने योग्य नहीं था :

(i) प्र.सा.1 के रूप में विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष याचिकाकर्ता का परिसाक्ष्य, इस आशय की कि हरबंस लाल मेहरा ने दिसंबर 1987 में माधो

को किरायेदारी का परित्याग कर दिया था, निम्नलिखित कारणों से विश्वास करने योग्य नहीं था :

(क) यह विश्वास करने योग्य नहीं था कि, 51 वर्षों से अधिक समय तक किराये पर दिए गए परिसर में किरायेदार रहने के बाद, हरबंस लाल मेहरा बिना किसी विचार के किरायेदारी के अधिकार का परित्याग कर देगा।

(ख) कोई परित्याग विलेख निष्पादित या उपलब्ध नहीं कराया गया था।

(ग) परित्याग वास्तव में कब हुआ, इसका कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं कराया गया था।

(घ) हरबंस लाल मेहरा द्वारा किरायेदारी के परित्याग के तथ्य का साक्ष्य देने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा हरबंस लाल मेहरा के किसी भी विधिक उत्तराधिकारी को साक्षी कठघरा में नहीं बुलाया गया था।

(ङ) प्र.सा.1 के रूप में साक्ष्य देने वाले याचिकाकर्ता की प्रतिपरीक्षा में यह पहली बार था कि यह कहा गया था कि किराये पर दिए गए परिसर की चाबियाँ माधो ने राज कुमार गुप्ता को सौंपी थीं।

(च) ऐसा कोई प्रकथन या तो मूल लिखित बयान में या याचिकाकर्ता द्वारा बेदखली याचिका के उत्तर के रूप में दायर संशोधित लिखित बयान में नहीं पाया गया था।

(ii) प्र.सा.2 रमेश यादव और प्र.सा.3 सुरेश शर्मा ने प्र.सा.1 के रूप में साक्ष्य देने वाले याचिकाकर्ता के परिसाक्ष्य को केवल "दोहराते हुए" समर्थन दिया।

(iii) हरबंस लाल मेहरा ने जिन परिस्थितियों में माधो से संपर्क किया था, उनमें किरायेदार परिसर के किरायेदारी में बने रहने के लिए अपनी अनिच्छा व्यक्त करते हुए और दिसंबर 1987 में "किसी एक रविवार" माधो ने रमेश यादव, कपूर चंद और सुरेश शर्मा की उपस्थिति में राज कुमार गुप्ता को प्रत्यक्ष रूप से किराये पर दिए गए परिसर में किरायेदार के रूप में रखा, जिस पर राज कुमार गुप्ता ने माधो को एक वर्ष के अग्रिम किराये के रूप में ₹ 9,600/- और सुरक्षा राशि के रूप में ₹ 50,000/- दिए, का उल्लेख याचिकाकर्ता द्वारा दायर मूल लिखित बयान में नहीं है, और केवल लिखित बयान में संशोधन के माध्यम से, पैरा (4क) को (4 ज) जोड़कर पेश किया गया था। विद्वान अति.कि.नि. ने संशोधन की अनुमति दी, लेकिन बिना किसी पूर्वाग्रह के। इसलिए, इसका उत्तर देने का दायित्व प्रत्यर्थी पर था कि वह इन दावों को प्रमाणित करे, जो वह करने में विफल रहा।

(iv) माधो और राज कुमार गुप्ता के बीच कोई नया किराया विलेख निष्पादित होने का कोई साक्ष्य नहीं था।

(v) जनवरी 1988 के बाद राज कुमार गुप्ता या याचिकाकर्ता द्वारा माधो को कभी भी कोई किराया दिए जाने का कोई साक्ष्य नहीं था।

(vi) याचिकाकर्ता द्वारा कोई भी लेखा बही प्रस्तुत नहीं की गई, हालाँकि उसने यह दिखाने के लिए आयकर दाता होने का दावा किया कि, लेखा बही में, माधो को कथित तौर पर भुगतान किए गए किराये को समायोजित और/या नियमित किया गया था।

(vii) ज़ाहिर तौर पर इस स्थिति से बचने के लिए, उत्तर देने वाले प्रत्यर्थी ने 24 जनवरी 2001 को प्रतिपरीक्षा में पहली बार गवाही दी कि जनवरी 1989 से मार्च 1989 तक, किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में, किराये का भुगतान माधो को उसके पिता राजकुमार गुप्ता द्वारा किया गया था और उसके बाद, उसने स्वयं नियमित आधार पर उक्त किराये का भुगतान किया था। हालाँकि, इसके बाद, उसने पक्ष परिवर्तन किया और गवाही दी कि किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में किराये का भुगतान 1995 के बाद ही लेखा बहियों में परिलक्षित हुआ था।

(viii) किसी भी स्थिति में, ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जो यह दर्शाता हो कि 25 मार्च 1990 को राज कुमार गुप्ता की मृत्यु तक याचिकाकर्ता या राज कुमार गुप्ता द्वारा माधो को कभी किराया दिया गया था।

(ix) न ही ऐसा कोई साक्ष्य था जो यह दर्शाता हो कि माधो ने कभी राज कुमार गुप्ता या याचिकाकर्ता से कोई किराया माँगा था।

(x) समान रूप से, राज कुमार गुप्ता या याचिकाकर्ता द्वारा दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 26^6 के तहत जमा या किराये का कोई साक्ष्य नहीं था।

(xi) प्र.सा.2 और प्र.सा.3 के परिसाक्ष्य को आँख बंद करके स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे हितबद्ध साक्षी थे।

(xii) याचिकाकर्ता या उसके पिता राज कुमार गुप्ता के माधो के अधीन प्रत्यक्ष किरायेदार बनने का कोई साक्ष्य नहीं था।

(xiii) वित्त वर्ष 1986 और 1987 के लिए आयकर निर्धारण आदेश आरके गुप्ता को किरायेदार परिसर में नहीं, बल्कि चाँदनी चौक स्थित उनके दुकान नंबर 829 पते पर जारी किए गए थे।

---

[6]26. भुगतान किए गए किराये की रसीद दिया जाना। —

(1) प्रत्येक किरायेदार को संविदा द्वारा निर्धारित समय के भीतर या ऐसे संविदा के अभाव में, जिस महीने के लिए किराया देय है, उसके अगले महीने के पंद्रहवें दिन तक किराया देना होगा [और जहाँ किराये के भुगतान में कोई चूक होती है, तो किरायेदार उस तिथि से पंद्रह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा जिस तिथि को किराये का ऐसा भुगतान देय होता है]।

(2) प्रत्येक किरायेदार जो अपने मकान मालिक को किराये का भुगतान करता है, वह मकान मालिक या उसके अधिकृत एजेंट से भुगतान की गई राशि के लिए मकान मालिक या उसके अधिकृत एजेंट द्वारा हस्ताक्षरित एक लिखित रसीद प्राप्त करने का हकदार होगा। 33[बशर्ते कि किरायेदार को अपने मकान मालिक को डाक मनीऑर्डर द्वारा किराया भेजने की छूट होगी।]

(3) यदि मकान मालिक या उसका अधिकृत एजेंट किरायेदार को उप-धारा (2) में निर्दिष्ट रसीद देने से इनकार करता है या उपेक्षा करता है, तो नियंत्रक, भुगतान की तिथि से दो महीने के भीतर किरायेदार द्वारा इस संबंध में उसे दिए गए आवेदन पर और मकान मालिक या उसके अधिकृत एजेंट को सुनने के बाद, आदेश द्वारा मकान मालिक या उसके अधिकृत एजेंट को किरायेदार को क्षति के रूप में भुगतान करने का निर्देश दे सकता है, ऐसी राशि किरायेदार द्वारा भुगतान किए गए किराये की राशि और आवेदन की लागत से दोगुनी से अधिक नहीं होगी और भुगतान किए गए किराये के संबंध में किरायेदार को एक प्रमाण पत्र भी दिया जाएगा।

(xiv) दुकान सं. 829 पर राज कुमार गुप्ता को वर्ष 1987-88 का कर निर्धारण आदेश भी जारी किया गया था। उक्त मूल्यांकन आदेश में, यह देखा गया कि "1988" में अंक "8" के ऊपर "7" लिखा गया था ताकि यह "1987" दिखाई दे।

(xv) सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि दि.न.नि. द्वारा 24 मार्च 1989 को जारी किया गया चालान, जो किराये पर दिए गए परिसर के बाहर चबूतरे के

लिए भुगतान की रसीद का साक्ष्य है, वह भी हरबंस लाल मेहरा के नाम पर जारी किया गया था, न कि याचिकाकर्ता या उसके पिता के नाम पर।

(xvi) इसलिए, यह इंगित करने के लिए कोई सार्थक दस्तावेज़ी साक्ष्य नहीं था कि राज कुमार गुप्ता को जनवरी 1988 से माधो के अधीन प्रत्यक्ष किरायेदार के रूप में रखा गया था।

(xvii) याचिकाकर्ता ने हरबंस लाल मेहरा के परिवार से किसी को भी साक्षी कठघरे में यह सिद्ध करने के लिए नहीं बुलाया कि हरबंस लाल मेहरा किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में किरायेदारी का परित्याग करना चाहता था।

(xviii) वाद सं. 74/1982 में, जो माधो के भाई-बहनों द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ, किराये पर दिए गए के परिसर के विभाजन की माँग करते हुए दायर किया गया था, हरबंस लाल मेहरा ने 10 जुलाई 1987 को एक आवेदन दायर किया, जिसमें या तो परिसर को उप-किरायेदारी पर देने या अपने व्यवसाय को चलाने के लिए किसी तीसरे पक्ष से जुड़ने की अनुमति माँगी गई। उसकी मृत्यु के परिणामस्वरूप, उसकी पत्नी सुशीला मेहरा ने समान प्रार्थनाओं के साथ 19 जुलाई 1988 को एक आवेदन दायर किया। इससे संकेत मिलता है कि हरबंस लाल मेहरा और उसके बाद, उसके विधिक

उत्तराधिकारी, जुलाई 1988 तक भी किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में किरायेदारी पर थे, जिससे यह तर्क खारिज हो गया कि, जनवरी 1988 से, राज कुमार गुप्ता को माधो के अधीन किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में प्रत्यक्ष किरायेदार के रूप में रखा गया था।

(xix) मामले को नए सिरे से विचार के लिए प्रतिपेषित करते समय इस न्यायालय द्वारा सि.वि. (मु.) 1281/2007 में पारित आदेश दिनांक 13 फ़रवरी 2012 के अनुसार इन दस्तावेज़ों पर विचार किया जाना आवश्यक था।

(xx) सि.वि. (मु.) 1281/2007 में इस न्यायालय द्वारा पारित 13 फ़रवरी 2012 के उक्त आदेश के अनुसार, एक अन्य दस्तावेज़ जिस पर विचार किया जाना आवश्यक था, वह उसकी वसीयत के निष्पादक हरबंस लाल मेहरा के बेटे जे.के. मेहरा द्वारा दायर प्रोबेट याचिका थी। प्रोबेट याचिका में, वसूली योग्य संपत्तियों में किराये पर दिए गए परिसर को शामिल करना दिखाया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने इसके विपरीत निर्णय लेने में गंभीर तथ्यात्मक त्रुटि की।

(xxi) 225 अगस्त 1988 को, हरबंस लाल मेहरा के विद्वान अधिवक्ता पी.एन. तिवारी ने माधो को पत्र लिखकर 1 दिसंबर 1987 से 31 अक्टूबर

1988 की अवधि के लिए किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में किराया देने की माँग की। हालाँकि पत्र के लेखक अर्थात् अधिवक्ता पी.एन. तिवारी को साक्षी कठघरे में बुलाकर पत्र को साबित नहीं किया गया था, लेकिन पत्र के साथ संलग्न बैंक ड्राफ़्ट 25 अगस्त 1988 का था और इंडियन ओवरसीज बैंक द्वारा रचा गया था, तो यह मान लेना उचित था कि यह हरबंस लाल मेहरा की मृत्यु के बाद उसके विधिक प्रतिनिधियों की ओर से उनके पट्टाधृत हितों की रक्षा के लिए भेजा गया था।

(xxii) इस प्रकार, विद्वान अति.कि.नि. का निष्कर्ष, कि किराये पर दिए गए परिसर में, या उसके संबंध में अपने किरायेदारी अधिकारों का दावा करने में, कभी भी मृतक हरबंस लाल मेहरा की विधवा या विधिक प्रतिनिधियों द्वारा कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई गई थी, दुराग्रहपूर्ण था और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के विपरीत था।

(xxiii) विद्वान अति.कि.नि. का निष्कर्ष, कि कथित उप-किरायेदार, अर्थात् याचिकाकर्ता के खिलाफ़ कार्यवाही में 1988 से 1994 तक माधो की ओर से अत्यधिक देरी हुई थी, वह भी त्रुटिपूर्ण और दुराग्रहपूर्ण था, क्योंकि साक्ष्य ने संकेत दिया कि, जैसे ही उसे याचिकाकर्ता के पक्ष में किराये पर दिए गए परिसर को उप-किरायेदारी पर देने के बारे में पता चला, माधो ने वाद शुरू करने के लिए अनुमति दायर की, जिसके परिणामस्वरूप स्लम अधिनियम

की धारा 19(1)(क) के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी दिनांक 29 अक्टूबर 1993 (प्रद. सह.सा.-1/1) का आदेश जारी किया गया।

27. इन परिस्थितियों में, विद्वान कि.नि.अधि. का मानना है कि सं.अं. अधिनियम की धारा 111(च) पर विद्वान अति.ति.नि. द्वारा निर्भरता, गलत थी। इस उद्देश्य के लिए, ***फ़ैब इंडिया ओवरसीज़ प्राइवेट लिमिटेड बनाम एस.एन. श्योपोरी*** में इस न्यायालय की एक खंड पीठ के निर्णय को उद्धृत करते हुए, विद्वान कि.नि.अधि. ने अभिनिर्धारित किया है कि, धारा 111(च) के तहत निहित किरायेदारी के परित्याग के लिए, यह आवश्यक था कि पट्टेदार पुराने पट्टे के तहत उसके द्वारा अभिधारित की गई संपत्ति का कब्ज़ा छोड़ दे। अभिलेख पर इस आशय का कोई तर्कपूर्ण साक्ष्य नहीं था कि हरबंस लाल मेहरा या उसके कानूनी प्रतिनिधियों ने किराये पर दिए गए परिसर के संबंध में उनके द्वारा अभिधारित की गई किरायेदारी का परित्याग कर दिया था। समान रूप से, याचिकाकर्ता द्वारा इस आशय का कोई साक्ष्य नहीं दिया गया कि माधो द्वारा उसके पिता के पक्ष में एक नई किरायेदारी रची गई थी। इस प्रकार, धारा 111(च) का यह अभिनिर्धारित करने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता है कि हरबंस लाल मेहरा द्वारा किरायेदारी का परित्याग किया गया था।

28. विद्वान कि.नि.अधि. दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 16, 17 और 18 पर भी निर्भर करता है, जिसके संदर्भ में आक्षेपित निर्णय के पैरा 29 और 30 इस प्रकार हैं :

> 29. उपरोक्त प्रावधानों को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलता है कि दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 16(2) के अनुसार, विधि या तथ्य में ऐसी कोई धारणा नहीं है कि किसी परिसर को पूरी तरह या आंशिक रूप से विधिपूर्वक रूप से उप-किरायेदारी पर दिया गया है, जब तक कि मकान मालिक द्वारा ऐसा करने के लिए लिखित सहमति नहीं दी जाती है। इसके अतिरिक्त, धारा 17(1) दि.कि.नि. अधिनियम स्पष्ट रूप से आदेश देता है कि यदि मकान मालिक की पूर्व लिखित सहमति प्राप्त करने के बाद किसी परिसर को उप-किरायेदारी पर दिया जाता है, तो किरायेदार या उप-किरायेदार को निर्धारित प्रपत्र में मकान मालिक को नोटिस देना अनिवार्य है। दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 56 के तहत विरचित किए गए दिल्ली किराया नियंत्रण नियम 1959 के अनुसार, नियम 21 के द्वारा ऐसे नोटिस को निर्धारित 'प्रपत्र-च' के अनुसार भेजा जाना आवश्यक है। अंत में, यदि ऐसा नोटिस दिया जाता है और किरायेदार के पास बाद में कोई विधिक अधिकार नहीं रह जाता है या किरायेदारी निर्धारित हो जाती है। उप-किरायेदार मकान मालिक के अधीन प्रत्यक्ष किरायेदार बन जाता है। **विधायी मंशा बहुत स्पष्ट है कि न केवल लिखित सहमति पूर्व और विशिष्ट होनी चाहिए, बल्कि मकान मालिक को उप-किरायेदारी का नोटिस भी दिया जाना चाहिए।** यह बताने के लिए पर्याप्त है कि दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 17(1) के अनुसार, वर्तमान मामले में किरायेदार या उप-किरायेदारों द्वारा निर्धारित प्रपत्र में कोई नोटिस कभी नहीं दिया गया था, और इस प्रकार प्रत्यर्थी सं. 6 का यह अभिवचन कि उसके पिता याचिकाकर्ता/मकान मालिक के अधीन प्रत्यक्ष किरायेदार बन गए थे, बनाए नहीं रखा जा सकता।

30. उपरोक्त प्राक्कल्पना के समर्थन में, हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत दिल्ली उच्च न्यायालय के मुरारी लाल बनाम अब्दुल गफूर नामक मामले में निर्णय का संदर्भ दे सकते हैं, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया कि "यदि विधिपूर्ण उप-किरायेदार निर्धारित नोटिस नहीं देता है तो वह किरायेदार की किरायेदारी के निर्धारण पर प्रत्यक्ष किरायेदार नहीं बनता है। उसे और किरायेदार को केवल इतना लाभ होता है कि उन्हें उपकिरायेदारी पर देने के आधार पर बेदखल नहीं किया जा सकता है। यदि किरायेदार को किसी भी आधार पर बेदखल कर दिया जाता है तो उप-किरायेदार भी उसके साथ बेदखल हो जाते हैं। "इसके अलावा, यह मुद्दा ***कपिल भार्गव बनाम सुभाष चंदर अग्रवाल*** नामक मामले में शीर्ष न्यायालय के निर्णय से तय हुआ है, जिसे अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने भी उद्धृत किया था। यद्यपि उक्त निर्णय दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 14(1)(घ) के तहत एक बेदखली याचिकाकर्ता के संदर्भ में दिया गया था, जहाँ किरायेदार ने लिखित सहमति के बिना परिसर को उप-किरायेदारी पर दे दिया था और याचिका दायर करने से पहले छह महीने की निरंतर अवधि के लिए परिसर में रहना बंद कर दिया था। और दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 17(2) के संदर्भ में मुद्दे का उत्तर देते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि :

> "16. अपीलार्थी का निवेदन यह है कि एक बार उप-किरायेदार धारा 16(1) के आधार पर एक विधिपूर्ण उप-किरायेदार बन जाता है, तो धारा 17 की उप-धारा (2) के तहत नोटिस देना केवल एक औपचारिकता होगी जो प्रक्रियात्मक है। इस प्रकार, इसका अनुपालन न करने पर धारा 16(1) के तहत सृजित उसका मूल अधिकार नहीं छीना जा सकता। यह प्रस्तुतिकरण उस उद्देश्य से चूक जाता है जिसके लिए धारा 17 की यह उपधारा (2) अधिनियमित की गई है। इस दायित्व को पूरा करने पर उप-किरायेदार को धारा 18 के तहत किरायेदार बनने का अधिकार

प्रदान किया जाता है। यह यह नोटिस प्रदान करना एक उप-किरायेदार को बेदखली से बचाता है, भले ही धारा 14 के तहत एक किरायेदार के खिलाफ़ डिक्री पारित की गई हो और ऐसे उप-किरायेदार को एक किरायेदार के रूप में स्वतंत्र अधिकार भी प्रदान करता है। इस प्रकार धारा 17(2) के तहत नोटिस देने को केवल प्रक्रियात्मक नहीं माना जा सकता है, वास्तव में यह ऐसे उप-किरायेदार को वास्तविक अधिकार प्रदान करता है। इसलिए, धारा 16, 17 और 18 को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 16(1) के अंतर्गत आने वाले उप-किरायेदारों को मकान मालिक की लिखित सहमति के बिना भी विधिपूर्ण उप-किरायेदार माना जाता है, लेकिन धारा 17(2) ऐसे उप-किरायेदार पर, अधिनियम लागू होने के छह महीने के भीतर, उप-धारा (2) के तहत मकान मालिक को नोटिस देने का दायित्व डालती है। विधायिका ने उप-धारा (2) में "विधिपूर्ण उप-किरायेदारी" शब्दों का उपयोग किया है। इसलिए भले ही अपीलार्थी धारा 16(1) के आधार पर एक विधिपूर्ण उप-किरायेदार है, फिर भी धारा 18 के तहत दिए गए अधिकार प्राप्त करने के लिए मकान मालिक को नोटिस देने के लिए ऐसे विधिपूर्ण उप-किरायेदार पर दायित्व डाला गया है। जैसाकि हमने कहा है कि यह 'उप-किरायेदार' के पक्ष में एक सुरक्षात्मक उपाय के रूप में है। इसलिए, इस प्रस्तुति में कोई गुणागुण नहीं है कि धारा 16(1) के तहत विधिपूर्ण किरायेदार के रूप में घोषणा मात्र से, उप-किरायेदार के खिलाफ़ बेदखली का कोई आदेश लागू नहीं किया जा सकता है और इसे खारिज कर दिया गया है। इसलिए, हम मानते हैं कि जब तक उप-किरायेदार द्वारा धारा 17 की उप-धारा (2) के तहत नोटिस नहीं दिया जाता है, वह धारा 18 का लाभ नहीं उठा सकता है और किरायेदार के खिलाफ़ धारा 14 के तहत पारित कोई भी डिक्री उप-किरायेदार के खिलाफ़ भी निष्पादन योग्य है।

29. उपर्युक्त चर्चा के बाद, विद्वान कि.नि.अधि. ने अपील सं. कि.नि.अधि. 30244/2016 को अनुमति दी है और उसके बाद, बेदखली याचिका ई-27/08/95 में विद्वान अति.कि.नि. के 6 जनवरी 2022 के निर्णय को अपास्त कर दिया।

30. उपरोक्त निर्णय से व्यथित होकर, वर्तमान याचिकाकर्ता ने , विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष और विद्वान कि.नि.अधि. के समक्ष प्रत्यर्थी 6 के रूप में, अपने विधिक प्रतिनिधिगण के माध्यम से, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका दायर की है।

31. मैंने याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अरविंद नायर और प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश भाटी को विस्तार से सुना है।

32. श्री नायर का तर्क, मुख्य रूप से, केवल यह है कि आक्षेपित निर्णय पारित करने में विद्वान कि.नि.अधि. ने अपने निहित क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है। श्री नायर मुझे आक्षेपित निर्णय को पैराग्राफ दर पैराग्राफ समझाते हुए कहते हैं कि विद्वान कि.नि.अधि. ने पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की थोक पुनर्मूल्यांकन के क्षेत्र में प्रवेश किया है, जो कि धारा 38 (1) में पूरी तरह से बाधित है, जिसके तहत अपील केवल "विधि के प्रश्नों" पर होती है।

विश्लेषण

33. <u>अनुच्छेद 227 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का दायरा</u>

33.1 वर्तमान याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई है। अनुच्छेद 227 के तहत किसी अधीनस्थ न्यायिक मंच के निर्णय में हस्तक्षेप का दायरा बेहद सीमित है। **एस्ट्राल्ला रबर बनाम दास एस्टेट (पी) लिमिटेड.10, गारमेंट क्राफ्ट बनाम प्रकाश चंद गोयल11, इब्रत फैज़ान बनाम ओमेक्स बिल्डहोम प्राइवेट लिमिटेड.12, पुरी इन्वेस्टमेंट्स बनाम यंग फ्रेंड्स एंड कंपनी.13 और साधना लोध बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड 14** मामलों के निर्णय हस्तक्षेप के दायरे की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। उक्त निर्णयों के प्रासंगिक पैरा इस प्रकार हैं:

> ***एस्ट्राल्ला रबर***[10]
>
> "7. इस न्यायालय ने ***अहमदाबाद एमएफजी एंड केलिको पीटीजी कंपनी लिमिटेड बनाम राम ताहेल रामनंद*** **15** के पैरा 12 में कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का उपयोग केवल और केवल उचित मामलों में, अधीनस्थ न्यायालयों और अधिकरणों को उनके अधिकार की सीमा के भीतर रखने के उद्देश्य से किया जाना है, न कि केवल त्रुटियों को सुधारने के लिए। इस संबंध में ***वरयाम सिंह बनाम अमरनाथ16*** *मामले का भी संदर्भ दिया गया है। इस न्यायालय ने* ***बथुटमल रायचंद ओसवाल बनाम लक्ष्मीबाई आर टार्ट***[17] में यह देखा है कि तथ्य की त्रुटि को ठीक करने के लिए अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण की शक्ति का उपयोग नहीं किया जा सकता है जिसे केवल एक वरिष्ठ न्यायालय ही अपील न्यायालय के रूप में अपनी वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए कर सकता है और यह कि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए खुद को अपील न्यायालय में परिवर्तित नहीं कर सकता है जब विधायिका ने अपील का अधिकार प्रदान नहीं किया है। इन स्पष्ट सिद्धांतों

के आधार पर, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में अनुच्छेद 227 के तहत स्पष्ट रूप से अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया।

गारमेंट क्राफ्ट[11]

"15. पक्षों के अधिवक्तागण को सुनने के बाद हमारा यह स्पष्ट मत है कि आक्षेपित आदेश **[प्रकाश चंद गोयल बनाम गारमेंट क्राफ्ट18]** कानून के विपरीत है और इसे कई कारणों से बरकरार नहीं रखा जा सकता है, लेकिन मुख्य रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने वाले सीमित क्षेत्राधिकार से विचलन है। पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय उन साक्ष्यों या तथ्यों पर पुनर्विचार, पुनर्मूल्यांकन करने के लिए प्रथम अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है, जिन पर चुनौती के तहत निर्णय आधारित है। जब अंतिम निष्कर्ष उचित हो या इसका समर्थन किया जा सकता हो तब पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार तथ्य की हर त्रुटि या यहां तक कि एक कानूनी दोष को ठीक करने के लिए नहीं होता है। उच्च न्यायालय को तथ्यों और निष्कर्षों पर आधारित अपने निर्णय को अवर न्यायालय या अधिकरण के निर्णय के स्थान पर नहीं रखना है। **[सेलिना कोल्हो परेरा5]** प्रयुक्त क्षेत्राधिकार सुधारात्मक क्षेत्राधिकार की प्रकृति में है ताकि कर्तव्य के प्रति गंभीर लापरवाही या खुलेआम दुरुपयोग, कानून या न्याय के मौलिक सिद्धांतों का उल्लंघन ठीक किया जा सके। अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग उचित मामलों में संयमित ढंग से किया जाता है, जैसे कि जब औचित्य साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है, या निष्कर्ष इतना अनुचित है कि कोई भी उचित व्यक्ति संभवतः ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है जिस पर न्यायालय या अधिकरण पहुंचा है। यह स्वयंसिद्ध है कि इस तरह की विवेकाधीन राहत का उपयोग यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए कि घोर अन्याय न हो।

16. अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार के दायरे को समझाते हुए, **एस्ट्राला रबर 10** में इस न्यायालय ने कहा है: (एससीसी पीपी. 101-102, पैरा 6)

> 6. भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक उच्च न्यायालय की शक्ति और क्षेत्राधिकार के प्रयोग के दायरे और परिधि की जांच की जाती है और इस न्यायालय के कई निर्णयों में समझाया गया है। इस अनुच्छेद के तहत शक्ति के प्रयोग में उच्च न्यायालय पर एक कर्तव्य है कि वह अवर न्यायालयों और अधिकरणों को अपने अधिकार की सीमा के भीतर रखे और यह देखे कि वे कानूनी तरीके से उनसे अपेक्षित या आवश्यक कर्तव्य का पालन करते हैं। अधीनस्थ न्यायालयों या अधिकरणों की सीमा के भीतर किए गए सभी प्रकार के कष्ट या गलत निर्णयों को ठीक करने के लिए उच्च न्यायालय के पास कोई असीमित परमाधिकार नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग और न्यायालयों या अधिकरणों के आदेशों में हस्तक्षेप करना कर्तव्य की गंभीर लापरवाही और कानून या न्याय के मौलिक सिद्धांतों के घोर उल्लंघन के मामलों तक सीमित है, जहां अगर उच्च न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करता है, तो एक गंभीर अन्याय कायम रहता है। यह भी अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि इस अनुच्छेद के तहत कार्य करते समय उच्च न्यायालय अपील न्यायालय के रूप में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है या किसी त्रुटि को ठीक करने के लिए अधीनस्थ न्यायालय के स्थान पर अपना निर्णय नहीं दे सकता है, जो अभिलेख पर स्पष्ट नहीं है। उच्च न्यायालय किसी अवर न्यायालय या अधिकरण के तथ्यों के निष्कर्षों को रद्द कर सकता है या अनदेखा कर सकता है, अगर उचित ठहराने के लिए कोई सबूत नहीं है या निष्कर्ष इतना अनुचित है, कि कोई भी उचित व्यक्ति संभवतः ऐसे निष्कर्ष पर नहीं आ सकता है, जिस पर न्यायालय या अधिकरण आया है।

इब्रत फैजान[12]

"28. संविधान के अनुच्छेद 227 के अधिकार क्षेत्र के दायरे और परिधि को इस न्यायालय द्वारा ***एस्ट्राला रबर10*** के मामले में समझाया गया है, जिसका इस न्यायालय द्वारा लगातार पालन किया गया है(**गारमेंट क्राफ्ट**[11] के मामले में इस न्यायालय का हालिया निर्णय देखें)। इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए मापदंडों के भीतर कार्य करना होगा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक रिट याचिका में अंतरिम स्थगन/राहत देने पर विचार करते समय भी, उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अधीक्षण के सीमित क्षेत्राधिकार को ध्यान में रखना होगा। इसलिए, राष्ट्रीय आयोग द्वारा पारित आदेश के खिलाफ संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक रिट याचिका में कोई अंतरिम स्थगन/राहत प्रदान करते समय, यह हमेशा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्तियों की कठोरता के अधीन होगा।

पुरी इन्वेस्टमेंट्स[13]

"14. हमारे सामने मौजूद मामले में, तीन डॉक्टरों द्वारा प्रासंगिक परिसर के एक हिस्से पर कब्ज़ा करना स्वीकार किया गया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जो तर्क दिया वह यह है कि जब अधिकरण विधि सिद्धांतों के आधार पर तथ्यों पर एक निष्कर्ष पर पहुंच गया था, जिसे इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया है, और तीन प्राधिकारियों से उद्धृत उपरोक्त अंशों में परिलक्षित होता है, तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप अनुचित था। उच्च न्यायालय के आदेश को बरकरार रखने के लिए हमें मनाने के लिए, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया है कि

परिसर पर पूर्ण नियंत्रण कभी भी चिकित्सकों को नहीं सौंपा गया था और प्रश्नगत परिसर में आना और जाना प्रत्यर्थी(गण)-किरायेदार के विशेष नियंत्रण में रहा। यह किरायेदार का मुख्य बचाव है। हमने संबंधित अधिवक्ता की प्रस्तुतियों पर विचार किया है और तथ्यान्वेषी मंचों और उच्च न्यायालय के निर्णयों का भी अध्ययन किया है। इस स्तर पर, हम विवाद के तथ्यात्मक पहलुओं पर दोबारा विचार नहीं कर सकते। न ही हम साक्ष्य की गुणवत्ता का आकलन करने के लिए उसकी फिर से जाँच कर सकते हैं, जिस पर दो तथ्यान्वेषी मंचों द्वारा विचार किया गया है। अपीलीय अधिकरण द्वारा प्रथमत: फोरम का दृष्टिकोण उलट दिया गया था। उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत क्षेत्राधिकार की प्रतिबंधात्मक प्रकृति के प्रति सचेत था। उच्च न्यायालय ने अपील के निर्णय में, यह दर्ज किया गया है कि वह अपीलीय मंच के निर्णय में इस तरह से हस्तक्षेप नहीं कर सकता जैसे कि अपील का निर्णय उच्च न्यायालय ने ही लिया हो। इस तरह के अवलोकन पर यह विचार करने के लिए आगे बढ़ा कि अगर यह पाया गया कि अपीलीय मंच के निष्कर्ष अनुचित थे तो निषेध करना पर्यवेक्षी न्यायालय का कर्तव्य था। अपील के अंतर्गत निर्णय में तीन स्थितियों का उल्लेख किया गया था कि कब विधि या तथ्यों के प्रश्नों पर कोई निष्कर्ष अनुचित हो जाएगा। ये हैं: -

(i) महत्वपूर्ण साक्ष्य पर विचार न करने के कारण गलत, या

(ii) ऐसे निष्कर्ष निकलना जो साक्ष्य के विपरीत हों, अथवा

(iii) उन निष्कर्षों पर आधारित जो कानून में अनुमति योग्य नहीं हैं

15. हम तथ्यान्वेषी मंच के निर्णयों पर पर्यवेक्षी न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की संभावना पर विधि सिद्धांतों के उच्च न्यायालय के प्रतिपादन से सहमत हैं।

लेकिन वैधानिक मंचों द्वारा तथ्यान्वेषणों के दो चरणों के निर्णयों का अध्ययन करने के बाद हमारा विचार है कि पर्यवेक्षी न्यायालय द्वारा इस सीमा का उल्लंघन किया गया था। यह पता लगाने के लिए साक्ष्यों की जांच करने के अपने अभ्यास में कि क्या उपरोक्त तीन शर्तों में से किसी का उल्लंघन किया गया था, पर्यवेक्षी न्यायालय द्वारा स्वयं साक्ष्य की पुन: जांच की गई थी।
16. हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने अपील के तहत निर्णय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अंतिम तथ्यान्वेषी मंच से असहमत होने के लिए तथ्यों की गहराई तक गया।"

साधना लोध[14]

"7. *संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदत्त पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार केवल यह देखने तक ही सीमित है कि क्या कोई अवर न्यायालय या अधिकरण अपने क्षेत्राधिकार से आगे बढ़ा है और अभिलेख में या कानून में किसी त्रुटि को ठीक करना नहीं है।* संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत पर्यवेक्षी शक्ति का प्रयोग करने में, उच्च न्यायालय अपीलीय न्यायालय या अधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता है। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर याचिका में उच्च न्यायालय को उन साक्ष्यों जिन पर अवर न्यायालय या अधिकरण ने आदेश पारित किया है, का पुनर्विलोकन या पुनर्विचार करने या या निर्णय में कानून की त्रुटियों को सुधारने की अनुमति नहीं है।"

(जोर दिया गया)

33.2 इसलिए, केवल तभी है जब आक्षेपित निर्णय पूर्वोक्त निर्णयों के सीमित दायरे में हस्तक्षेप करने योग्य है, तो यह न्यायालय अनुच्छेद 227 के तहत ऐसा करने के लिए तैयार होगा।

33.3 अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त शक्ति अधीक्षण - या पर्यवेक्षी प्रकृति की है। निःसंदेह, इसका स्वरूप अपीलीय नहीं है। न ही, यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त उत्प्रेषण के रूप में न्यायिक समीक्षा कर सकती है। अनुच्छेद 227 के तहत न्यायालय केवल पर्यवेक्षण करता है। शक्ति का प्रयोग न्यायिक स्वायत्तता और न्यायालय की स्वतंत्रता के उचित सम्मान के साथ किया जाना है, जिसका निर्णय जांच के अधीन है। यह केवल वहीं होता है जहां निर्णय क्षेत्राधिकार से बाहर जाकर लिया जाता है, या अनुचितता की सीमा तक घोर अवैधता नजर आती है, वहां हस्तक्षेप का अवसर उत्पन्न होता है, अनिवार्य रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्यायालय, जिसने निर्णय लिया है, ने अपने वैध परिधि के भीतर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है। अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप का उद्देश्य और मंशा केवल इतनी ही है, इससे अधिक नहीं। इस प्रक्रिया में, निर्णय गुण-दोष के आधार पर पलट सकता है, यह केवल एक अनुषांगिक निष्कर्ष है। इसलिए, इसका परिणाम यह होगा कि, जब तक जांच के अधीन आदेश क्षेत्राधिकार की कमी या विकृत अवैधता को प्रदर्शित नहीं करता है, अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप को रोक दिया जाएगा, भले ही गुण-दोष के आधार पर

निर्णय उपयुक्त न लगे, या यदि अनुच्छेद 227 न्यायालय स्वतंत्र रूप से तथ्यों और सबूतों की जांच करता है, तो विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचता है।

33.4 अनुच्छेद 227 न्यायालय विद्वान अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष रखे गए साक्ष्यों की किस सीमा तक जांच करेगा, इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए इसे देखा जाना चाहिए। अनुच्छेद 227 न्यायालय स्वतंत्र रूप से साक्ष्य की पुनः सराहना नहीं करता है। हालाँकि, यह साक्ष्य को अवांछित नहीं मानता है, यदि केवल इसलिए कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा साक्ष्य की सराहना का तरीका एक प्रासंगिक कारक है, यह जांच करते समय कि क्या चुनौती के तहत आदेश दुराग्रह पूर्ण है। इसलिए, केवल यह आकलन करने के लिए कि विद्वान अधीनस्थ न्यायालय ने जिस तरीके से कार्य किया है वह दुराग्रह पूर्ण है या नहीं, अनुच्छेद 227 न्यायालय प्रशंसा के विपरीत - साक्ष्य मूल्यांकन के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए उदार होगा। उच्च न्यायालय साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है, केवल यह जांचने के लिए कि क्या विद्वान अधीनस्थ न्यायालय का आदेश दुराग्रह पूर्ण है। यदि ऐसा नहीं होता है, तो, न्यायालय जांच की दृष्टि से साक्ष्यों की दोबारा सराहना नहीं कर सकती है क्या साक्ष्यों की सराहना के परिणामस्वरूप अधीनस्थ न्यायालय जिस निष्कर्ष पर पहुंची है, वह सही या उचित निष्कर्ष है या नहीं। अनुच्छेद 227 न्यायालय को नीचे दिए गए विद्वान न्यायालय के निष्कर्ष और उसके साथ किसी भी हस्तक्षेप को इस आधार पर स्थगित करने की आवश्यकता है

कि, उसकी राय में, किसी अन्य निष्कर्ष का वैध रूप से पालन किया जाना चाहिए, यदि साक्ष्य की सही ढंग से या उचित रूप से सराहना की गई, तो इसमें निहित अधिकार क्षेत्र का गंभीर उल्लंघन होगा।

33.5 *उस सीमा तक, और केवल उस सीमा तक,* क्या यह कहा जा सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 में साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के खिलाफ कोई थोक प्रतिबंध नहीं पढ़ा जा सकता है।

34. (मैं यहां यह देखने में जल्दबाजी कर रहा हूं कि मैं "अधीनस्थ न्यायालय" अभिव्यक्ति का उपयोग उक्त विद्वान न्यायालय का अनादर किए बिना और केवल सुविधा के लिए करता हूं।)

35. **<u>दुराग्रह</u>**

35.1 "दुराग्रह" एक अवधारणा है जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा अनगिनत बार परिभाषित किया गया है। ***गामिनी बाला कोटेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य*** [19] के मामले में, एक आपराधिक मामले में बरी किए जाने के खिलाफ अपील की जांच करते समय, उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से निपटने वाले उच्चतम न्यायालय ने साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करते हुए, इस प्रकार देखा:

> "यह सच है, जैसा कि श्री राव ने तर्क दिया है, कि विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए बरी किए गए निर्णय के खिलाफ अपील में हस्तक्षेप दुर्लभ और असाधारण परिस्थितियों में होना चाहिए। हालाँकि, अब तक यह

> अच्छी तरह से तय हो चुका है कि विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए साक्ष्यों और निष्कर्षों का पुनर्मूल्यांकन करने की उच्च न्यायालय को स्वतंत्रता है, लेकिन केवल उस मामले में जब विचारण न्यायालय के निर्णय को विकृत बताया गया हो। विधि में समझे जाने वाले शब्दों में "दुराग्रह" शब्द को "साक्ष्य के वजन के विरुद्ध" के रूप में परिभाषित किया गया है।

मैं बड़ी विनम्रता के साथ यह कहने का साहस करूंगा कि अनुच्छेद 227 के तहत साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की उच्च न्यायालय की शक्ति, बरी किए जाने के खिलाफ अपील पर विचार करते समय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने की उच्च न्यायालय की शक्ति के समानांतर है, हालांकि दोनों उदाहरण अन्यथा चॉक और पनीर के समान हैं।

35.2 ***किलाशो देवी बर्मन बनाम सी.आई.टी.***[20] का मानना है कि "एक निष्कर्ष केवल तभी दुराग्रह होता है जब वह ऐसा हो कि कोई भी व्यक्ति, विधिवत निर्देशित, उसके सामने अभिलेख पर, यथोचित रूप से उस तक नहीं पहुँच सकता है"। ***विश्वनाथ अग्रवाल बनाम सरला विश्वनाथ अग्रवाल***[21] मामले में, यह माना गया था कि न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष दुराग्रह हैं यदि वे "बिना किसी साक्ष्य पर आधारित हैं या अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर कोई भी उचित व्यक्ति उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है"। ***दामोदर लाल बनाम सोहन देवी***' के अनुच्छेद 12 और 14 में "दुराग्रह" के मुद्दे को इस प्रकार निपटाया गया है:

"12. जो भी हो, यह सवाल कि क्या किराए के परिसर में कोई संरचनात्मक परिवर्तन हुआ है, मालिक के व्यक्तिगत ज्ञान तक सीमित तथ्य नहीं है। इसे किसी भी स्वीकार्य एवं विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। अभि.सा. 1 और 2 की जांच करके वादी द्वारा उस बोझ को सफलतापूर्वक हटा दिया गया है। प्रत्यर्थी उस सबूत को हिला नहीं सके। वास्तव में, यह तथ्य स्वयं प्रत्यर्थीगण के साक्ष्य से आंशिक रूप से स्वीकृत तथ्य के रूप में सिद्ध होता है। इसलिए, केवल विचारण न्यायालय ही संरचनात्मक परिवर्तन पर निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा। सबूतों की पुनः सराहना पर प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उस निष्कर्ष का समर्थन किया गया है, और इसलिए, दूसरी अपील में उच्च न्यायालय द्वारा उस निष्कर्ष को खारिज करना उचित नहीं था जो तथ्य का एक शुद्ध प्रश्न है। हमें यह नोट करने में कोई झिझक नहीं है कि उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए विधि के दोनों प्रश्न विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं हैं। भले ही तथ्य का पता लगाना गलत हो, यह अपने आप में विधि का प्रश्न नहीं बनेगा। गलत निष्कर्ष साक्ष्यों के पूर्ण गलत अध्ययन से उत्पन्न होना चाहिए या यह केवल अनुमानों और अनुमानों पर आधारित होना चाहिए। विकृति पर सबसे सुरक्षित दृष्टिकोण तथ्यों पर उचित व्यक्ति के अनुमान पर क्लासिक दृष्टिकोण है। उनके लिए, यदि नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा दिए गए साक्ष्य में तथ्यों पर निष्कर्ष संभव है, तो कोई दुराग्रह नहीं है। यदि नहीं, तो निष्कर्ष दुराग्रह है। साक्ष्य की अपर्याप्तता या साक्ष्य का अलग-अलग अध्ययन दुराग्रह नहीं है।

******

14. ***एस.आर. तिवारी बनाम भारत संघ***[23]में, ***राजिंदर कुमार किंद्रा बनाम दिल्ली प्रशासन.***[24], से शुरू करके, इस न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, इसे अनुच्छेद 30 पर रखा गया था:

"30. किसी न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों को दुराग्रह माना जा सकता है यदि निष्कर्ष प्रासंगिक सामग्री को अनदेखा या बाहर करके या अप्रासंगिक/अस्वीकार्य सामग्री पर विचार करके निकाले गए हों। निष्कर्ष को दुराग्रह भी कहा जा सकता है यदि यह 'साक्ष्य के वजन के विरुद्ध' है, या यदि निष्कर्ष इतनी अपमानजनक रूप से तर्क की अवहेलना करता है कि तर्कहीनता के दोष से ग्रस्त है। यदि कोई निर्णय बिना किसी सबूत या पूरी तरह से अविश्वसनीय सबूत के आधार पर आता है और कोई भी उचित व्यक्ति उस पर कार्रवाई नहीं करेगा, तो आदेश दुराग्रह हो जाएगा। लेकिन अगर अभिलेख पर कुछ सबूत हैं जो स्वीकार्य हैं और जिन पर भरोसा किया जा सकता है, तो निष्कर्षों को दुराग्रह नहीं माना जाएगा और निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

*(**राजिंदर कुमार किंद्रा** [24], **गामिनी बाला कोटेश्वर राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य**[19].और **बाबू बनाम केरल राज्य**[25] मामलों के माध्यम से।"*

(जोर दिया गया)

36. इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि विद्वान कि.नि.अधि. ने दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 के तहत कार्य करते हुए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया है। श्री नायर का तर्क यह है कि यह एक न्यायक्षेत्र संबंधी चूक है जो कि.नि.अधि. के आक्षेपित निर्णय को पूरी तरह से निष्फल करने के लिए काफी गंभीर है।

37. <u>दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 (1)</u>:

37.1 धारा 38 (1) के तहत, अपील केवल विधि के सवालों पर होगी।

37.2 इस बिंदु पर, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 (1) द्वारा विद्वान कि.नि.अधि. में निहित क्षेत्राधिकार की प्रकृति को सि.प्र.सं. की धारा 100 द्वारा उच्च न्यायालय में निहित अधिकार क्षेत्र के साथ अलग करना शिक्षाप्रद है। दोनों मामलों में, अपीलीय प्रकृति के होने के बावजूद क्षेत्राधिकार केवल तभी निहित होता है जब विधि का प्रश्न शामिल हो। दो भेद तुरंत स्पष्ट हैं; सबसे पहले, वह, जबकि अनुभाग 38 (1) वहां लागू होता है जहां "विधि का प्रश्न" शामिल है, सि.प्र.सं. की धारा 100 केवल तभी लागू होती है जब "विधि का पर्याप्त प्रश्न" हो, और दूसरी बात, जबकि धारा 100(4) में विशेष रूप से उच्च न्यायालय को अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से पहले मामले में शामिल विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने की आवश्यकता होती है, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38(1) द्वारा विद्वान कि.नि.अधि. पर ऐसा कोई दायित्व नहीं डाला जाता है।

37.3 जहां तक भेद के दूसरे पहलू का संबंध है, उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का व्यापक स्तर है इस आशय के लिए कि, यदि उच्च न्यायालय विधि के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न को तैयार किए बिना, सि.प्र.सं. की धारा 100 के तहत दूसरी अपील की अनुमति देता है, तो उच्च न्यायालय का निर्णय वास्तव में अनुचित है। दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 के लिए सिद्धांत को स्वचालित रूप से

विस्तारित करना संभव नहीं हो सकता है, क्योंकि धारा 38 में, सि.प्र.सं. की धारा 100 (4) के अनुरूप कोई प्रावधान नहीं है, जिसमें विद्वान कि.नि.अधि. को धारा 38 (1) के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए आगे बढ़ने से पहले मामले में उत्पन्न होने वाले विधि के प्रश्न को फ्रेम करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 (1) के तहत पारित विद्वान कि.नि.अधि. का एक अपीलीय आदेश - जैसे कि वर्तमान - जो विधि के प्रश्न को तैयार किए बिना मामले में आगे बढ़ता है, उस एकमात्र आधार पर समाप्त नहीं हो सकता है। फिर भी, मेरी सुविचारित राय में, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38(1) में पाए गए स्पष्ट शर्त के मद्देनजर, जो उन मामलों में प्रावधान की प्रयोज्यता को प्रतिबंधित करता है जिनमें विधि का प्रश्न शामिल है, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38(1) के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले विद्वान कि.नि.अधि. के लिए भविष्य में विधि का प्रश्न तैयार करना उचित होगा। जो, संबंधित विद्वान कि.नि.अधि. की राय में, चुनौती पर विचार करने या अपील की अनुमति देने के लिए आगे बढ़ने से पहले मामले में उत्पन्न होता है।

37.4 सि.प्र.सं. की धारा 100 और दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 के बीच अधिक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि, जबकि धारा 100 केवल वहां लागू होती है जहां "विधि का पर्याप्त प्रश्न" होता है, धारा 38 वहां लागू होती है जहां मामले में "विधि का प्रश्न" शामिल होता है।

37.5उच्चतम न्यायालय ने "विधि के प्रश्न" और "विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न" के बीच अंतर पर ज़ोर दिया है। ***सर चुन्नीलाल वी. मेहता बनाम सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड***[27] में, उच्चतम न्यायालय ने "विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न" के संकेत पर इस प्रकार टिप्पणी की:

> "यह निर्धारित करने के लिए उचित परीक्षण कि क्या मामले में उठाया गया विधि का कोई प्रश्न पर्याप्त है, हमारी राय में, क्या यह सामान्य सार्वजनिक महत्व का है या क्या यह सीधे और महत्वपूर्ण रूप से पार्टियों के अधिकारों को प्रभावित करता है और यदि हां, तो क्या यह या तो इस अर्थ में एक खुला प्रश्न है कि इसे इस न्यायालय या प्रिवी काउंसिल या संघीय न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से तय नहीं किया गया है या यह कठिनाई से मुक्त नहीं है या वैकल्पिक विचारों पर चर्चा की आवश्यकता है। यदि प्रश्न उच्चतम न्यायालय द्वारा तय कर दिया गया है या प्रश्न निर्धारित करने में लागू होने वाले सामान्य सिद्धांत अच्छी तरह से तय हो गए हैं और उन सिद्धांतों को लागू करने का सवाल ही नहीं है या यह दलील स्पष्ट रूप से बेतुकी है कि यह प्रश्न विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं होगा।"

बीयर सैन बनाम सीमा शुल्क आयुक्त में, उच्चतम न्यायालय ने माना कि "विधि का प्रश्न" और "विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न" के बीच अंतर था, लेकिन अंतर की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए आगे नहीं बढ़ा। ***सीमा शुल्क आयुक्त बनाम विजय दशरथ पटेल***[29] में, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 130 के तहत अपील पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की जांच करते हुए,

जिसके तहत अपील केवल "विधि के महत्वपूर्ण प्रश्नों" पर होगी। उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की और कहा:

> "22. हम इस तथ्य से अनजान नहीं हैं कि इस संबंध में उच्च न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र सीमित है। हालाँकि, विधि का महत्वपूर्ण प्रश्न क्या होगा, यह हर मामले में अलग-अलग होगा।

23. *इसके अलावा, हालांकि तथ्य की खोज में हस्तक्षेप किया जा सकता है जब यह दुराग्रह होता है, लेकिन यह भी ट्राइट है कि जहां नीचे की न्यायालयों ने पूर्ववर्ती परिस्थितियों की दर को नजरअंदाज कर दिया था और निर्णय को अप्रासंगिक मामलों से प्रभावित होने की अनुमति दी थी, उच्च न्यायालय मामले पर विचार करने और अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्ष पर आने में न्यायसंगत होगा।* [देखिए ***मदन लाल बनाम श्रीमती गोपी और अन्य*** [30]]

24. *उच्च न्यायालय यह राय देने का भी हकदार होगा कि उसके विचार के लिए विधि का एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है जब सामग्री और प्रासंगिक तथ्यों को नजरअंदाज कर दिया गया है और साक्ष्य की सराहना करने में विधिक सिद्धांतों को लागू नहीं किया गया है। प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए किसी निर्णय पर पहुंचना,* विधि *के एक महत्वपूर्ण प्रश्न को भी जन्म देगा। हालाँकि, यह अलग हो सकता है कि केवल तथ्यों के एक ही सेट पर उच्च न्यायालय एक अलग दृष्टिकोण अपनाता है।* [देखिए ***सीमा शुल्क कलेक्टर, बॉम्बे बनाम स्वास्टिक वूलन (प्रा) लिमिटेड एवं अन्य।***[31]और ***मेट्रोर्क लिमिटेड बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्त, कलकत्ता***[32]]

25. *यहां तक कि ऐसे मामले में जहां साक्ष्य गलत पढ़ा जाता है, उच्च न्यायालय के पास हस्तक्षेप करने की शक्ति होगी।* [देखिए ***पश्चिम बंगाल विद्युत नियामक आयोग बनाम सीईएससी लिमिटेड,*** और यह भी

सीमा शुल्क आयुक्त, मुंबई बनाम ब्यूरो वेरिटास और अन्य।[34]]"

37.6 स्पष्ट रूप से, अभिव्यक्ति "विधि का पर्याप्त प्रश्न" उतना सीमित नहीं है जितना कि अन्यथा दिखाई देगा, और, यदि साक्ष्य की सराहना इस तरह से की जाती है जो है *पूर्व दृष्टया* गलत, किसी दिए गए मामले में, यह मानना संभव है कि "विधि का पर्याप्त प्रश्न" उठता है। ***विजय दशरथ पटेल***[29] में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में अभिव्यक्ति "विधि के पर्याप्त प्रश्न" की समझ से बाहर निकलते हुए, साक्ष्य की कोई भी गलत सराहना, किसी दिए गए मामले में, "विधि के प्रश्न" के समान हो सकती है, जो दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38(1)के तहत हस्तक्षेप को उचित ठहराती है।

37.7 उस ने कहा, जहां तक दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 (1) द्वारा निहित अधिकार क्षेत्र का संबंध है, उस संबंध में भारी राय यह है कि प्रावधान अपने व्यापक आयाम में अपीलीय क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करता है। साक्ष्य की थोक पुनर्मूल्यांकन, जिस तरह से अति.कि.नि. द्वारा साक्ष्य की सराहना की गई थी, स्पष्ट रूप से, धारा 38 (1) के तहत अनुमति नहीं दी जा सकती है; अन्यथा, यह उपबंध में शामिल केवल विधि के प्रश्नों पर शब्दों को अनावश्यक रूप से कम करने के समान होगा।

37.8 धारा 38(1) द्वारा विद्वान कि.नि.अधि. में निहित क्षेत्राधिकार की प्रतिबंधात्मक प्रकृति को रेखांकित करने के लिए, श्री नायर ने ***मनभरी देवी बनाम***

जयमत राय अश्वनी कुमार[35], के अनुच्छेद 3, 4 और 9 से 12, अनुच्छेद 8, 10 और ***श्याम सुंदर दानिया बनाम जेडी कपूर***[36] का पैरा 14 और ***राम दुलारी बनाम ओम प्रकाश गुप्ता***[37] का हवाला दिया। ये अंश इस प्रकार पढ़ते हैं:

मनभरी देवी[35]:

"3. याचिकाकर्ता ने दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 (इसके बाद संदर्भित किया जाएगा) की धारा 14 (1) (क) और 14 (1) (ख) के तहत किराए का भुगतान न करने और उप-किराए पर देने के आधार पर प्रत्यर्थीगण के खिलाफ बेदखली याचिका दायर की थी। 'उक्त अधिनियम' के रूप में) निजी नंबर 8, लक्ष्मी मार्केट, कूचा नटवा, चांदनी चौक, दिल्ली-110006 वाली संपत्ति संख्या 1102 की पहली मंजिल पर दुकान के संबंध में (इसके बाद इसे 'परिसर' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) '). अतिरिक्त किराया नियंत्रक (इसके बाद इसे 'अति.कि.नि.' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) ने दिनांक 18.8.2004 के आदेश के तहत पाया कि प्रत्यर्थी नंबर 1 किरायेदार ने किराए के भुगतान में चूक की थी, लेकिन उक्त अधिनियम की धारा 14(2) का लाभ दिया गया था। और प्रत्यर्थी नंबर 1 को बकाया किराया चुकाने के लिए 30 दिनों का समय दिया गया था, ऐसा न करने पर बेदखली आदेश का पालन किया जाएगा। जहां तक उप-किराएदारी के आधार का संबंध है, अति.कि.नि. ने भी याचिकाकर्ता के पक्ष में पाया क्योंकि प्रत्यर्थी नंबर 1 को प्रत्यर्थी नंबर 2 को परिसर को सबलेट करने या कब्जा छोड़ने के लिए पाया गया और इस प्रकार, धारा 14 के तहत बेदखली का आदेश पारित किया गया। उक्त अधिनियम के (1)(ख) में प्रत्यर्थीगण को दो महीने के भीतर कब्जा सौंपने का निर्देश दिया गया है।

4. दिनांक 18.8.2004 के उक्त आदेश से व्यथित प्रत्यर्थी ने अतिरिक्त किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण (इसके बाद 'अधिकरण' के रूप में संदर्भित) के समक्ष अपील दायर की। अधिकरण ने दिनांक 5.5.2005 के आदेश के संदर्भ में अपील को खारिज कर दिया, जहां तक गैर-भुगतान के आधार का संबंध है, लेकिन उक्त अधिनियम की धारा 14 (1) (ख) के तहत पारित बेदखली आदेश को उपकिराएदारी के आधार पर रद्द कर दिया। याचिकाकर्ता मकान मालिक ने इससे व्यथित होकर भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 के तहत वर्तमान याचिका दायर की है।

******

9. विचारण न्यायालय ने पाया कि प्रत्यर्थीगण का बयान एक रोलिंग स्टोन की तरह था और बयान में विरोधाभासों को इंगित किया गया था। इस तरह के विरोधाभासों में प्रत्यर्थी नंबर 1 की अनुपस्थिति में प्रत्यर्थी नंबर 2 द्वारा किराए के भुगतान की दलील शामिल थी, जबकि साथ ही प्रत्यर्थीगण ने प्रत्यर्थी नंबर 2 को किराए के बकाया का भुगतान करने से इनकार कर दिया था। साक्ष्य के दौरान एक नई कहानी तैयार करने की मांग की गई थी कि कुछ समय के लिए प्रत्यर्थी नंबर 2 की दुकान में दीमक का हमला हुआ था और प्रत्यर्थी नंबर 2 ने प्रत्यर्थी नंबर 1 से लेख को प्रत्यर्थी नंबर 1 की दुकान में रखने का अनुरोध किया था। लिखित बयान में इस तरह के किसी भी विवरण या आवश्यक तथ्यों का अभाव था। विचारण न्यायालय ने वास्तव में पाया कि प्रत्यर्थीगण ने अपने हलफनामे और लिखित बयान के विपरीत गवाही दी थी। प्रत्यर्थी नंबर 2 के संस्करण पर अविश्वास किया गया था कि उसे प्रत्यर्थी नंबर 1 द्वारा याचिकाकर्ता को चेक के माध्यम से भुगतान किए गए किराए के लिए प्रतिपूर्ति की जा रही थी।

10. विचारण न्यायालय ने उपरोक्त के लिए ठोस कारण बताए हैं। प्रत्यर्थी नंबर 2 अपने लेखा पुस्तक में याचिकाकर्ता को किराए के भुगतान को व्यय के रूप में

दिखा रहा था और आयकर उद्देश्यों के लिए इसका मूल्यांकन करवा रहा था, जबकि प्रत्यर्थी नंबर 1 प्रत्यर्थी नंबर 2 को किए जा रहे किराए के भुगतान/प्रतिपूर्ति को प्रतिबिंबित नहीं कर रहा था। प्रत्यर्थी नंबर 1 के लेखा पुस्तक में या व्यक्तिगत मूल्यांकन में, भले ही वे आयकर निर्धारिती थे। प्रत्यर्थी नंबर 1 की ओर से एकमात्र स्पष्टीकरण यह दिया गया कि चूंकि परिसर की किराया राशि बहुत कम थी, इसलिए इसे रिटर्न में नहीं दिखाया गया था। था।

11. मेरे सुविचारित विचार में, यह अभिलेख पर साक्ष्य की सही सराहना थी। अति.कि.नि. ने उपरोक्त तथ्य को सही ढंग से नोट किया है और, मेरे विचार से, यह एक प्रमुख कारण है कि प्रत्यर्थीगण की कहानी पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। ऐसा नहीं हो सकता है कि प्रत्यर्थी नंबर 1 के लिए यह राशि बहुत छोटी हो जिसे वह अपने लेखा पुस्तक में दर्शा सके, जबकि प्रत्यर्थी नंबर 2 इसे अपने खाते की किताबों में दर्शा रहा हो। प्रत्यर्थी नंबर 1 और प्रत्यर्थी नंबर 2 के बीच अंतर हस्तांतरण भी खातों में परिलक्षित नहीं हुआ।

12. मेरे सुविचारित विचार से अधिकरण के पास प्रशासनिक सुधार आयोग के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं था। सबसे पहले इस बात को समझना होगा कि अधिकरण के समक्ष पहली अपील का दायरा सीमित है क्योंकि यह केवल विधि के सवाल पर हो सकता है। ...

13. निर्णय के पैरा 8 में, अधिकरण कहता है कि अपील में शामिल विधि का सवाल यह है कि क्या बेदखली के दो आधारों के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा लौटाए गए तथ्य के निष्कर्ष साक्ष्य के वजन के खिलाफ हैं। मेरे सुविचारित विचार में, अधिकरण ने वास्तव में विधि और तथ्यों दोनों पर अपील की पहली न्यायालय के रूप में काम किया, जिसकी अनुमति नहीं थी।

श्याम सुंदर दानिया[36]

"8. विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर भी जोर दिया कि उक्त अधिनियम की धारा 39 के प्रावधानों से निपटते समय, जो दूसरी अपील के लिए प्रदान की गई थी, यह माना गया था कि केवल विधि के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के मामले में, यह न्यायालय किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण के निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है। इस प्रावधान को 1988 से क़ानून से हटा दिया गया है और उक्त अधिनियम की धारा 38 के तहत पहली अपील अब केवल विधि के प्रश्न पर किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण में की जा सकती है। इस प्रकार उक्त पैरामीटर लागू होंगे और ए.आर.सी.टी.के पास अति.कि.नि. के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।

******

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतियों पर विचार करने पर, मेरा विचार है कि ए.आर.सी.टी. के आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है। सबसे पहले, अति.कि.नि. का तर्क साक्ष्य की सराहना पर आधारित था जिसने प्रथम अपील में विधि का कोई सवाल नहीं उठाया था और इस प्रकार इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था। दूसरा, यदि साक्ष्य देखे भी जाते हैं, तो यह एक स्वीकृत स्थिति है कि वर्तमान कार्यवाही से बहुत पहले दुकान के संबंध में पक्षों के बीच मुकदमेबाजी हुई थी। यहां मूल प्रत्यर्थी के बेटे की गवाही कि उसे स्वयं याचिकाकर्ता संख्या 2 ने उप किरायेदारी के निर्माण के बारे में सूचित किया था, को शायद ही स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि यह किसी भी विवेकपूर्ण संचार के विरुद्ध होगा। ए.आर.सी.टी. इस तथ्य से प्रभावित प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत लाइसेंस वर्ष 1991 का था और यदि उसने 1975 से वैकल्पिक परिसर किराए पर लिया था, तो ऐसा लाइसेंस पहले की तारीख से उपलब्ध होना चाहिए था। इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता। याचिकाकर्ताओं ने F-14, विकास मार्ग स्थित परिसर के संबंध में याचिकाकर्ता संख्या 2 के नाम पर वर्ष 1983 के दिल्ली दुकान और

प्रतिष्ठान अधिनियम, 1954 के तहत पंजीकरण का प्रमाण पत्र, संलग्नक पी-1 दाखिल किया है।

****

14. मेरा विचार है कि आक्षेपित आदेश एक पेटेंट और क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि से ग्रस्त है और इस प्रकार इसे रद्द कर दिया जाता है और दिनांक 01.09.1995 के अति.कि.नि. के आदेश को बहाल किया जाता है।

राम दुलारी[37]

"5. चूंकि अतिरिक्त किराया नियंत्रक के आदेश के खिलाफ अपील केवल विधि के सवाल पर दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 38 के तहत है, इसलिए प्रत्यर्थी द्वारा अपील पर अतिरिक्त किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण ने अपने निर्णय के लिए विधि के निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए:

"(i) क्या अभि.सा.-1 श्री चंद्रेश गोयल, जो अपनी पावर ऑफ अटॉर्नी प्र. अभि.सा.1/1 के आधार पर प्रत्यर्थी के गवाह के रूप में पेश हुए, उनकी ओर से साक्ष्य देने के लिए सक्षम थे।

ii. क्या आंशिक बेदखली के लिए याचिका विचारणीय थी?

iii. क्या प्रत्यर्थी सूट बिल्डिंग के अलग-अलग हिस्सों के दो मालिकों में से एक होने के नाते अकेले किरायेदार आवास के संबंध में बेदखली की मांग करने वाले अपीलार्थियों के खिलाफ बेदखली याचिका दायर करने के लिए सक्षम था, जिसका एक हिस्सा उसके स्वामित्व में आता था और दूसरा हिस्सा उसके पति श्री राम भगत गोयल के स्वामित्व में आता था।

iv. क्या प्रत्यर्थी ने वाद परिसर पर अपीलार्थी संख्या 2 का विशेष कब्ज़ा दिखाने के लिए आवश्यक सबूत पेश किए हैं ताकि कथित उप-किराएदारी को गलत साबित करने के लिए सबूत का बोझ अपीलार्थियों पर डाला जा सके।

*****

12. मैं यह भी मानता हूं कि विद्वान अतिरिक्त किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण ने एक ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करके अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया जो निषिद्ध था। अतिरिक्त किराया नियंत्रण अधिकरण के लिए तथ्यों का पुन मूल्यांकन करना और अतिरिक्त किराया नियंत्रक द्वारा दिए गए तथ्यों के निष्कर्ष को बदलना निषिद्ध है। विद्वान अतिरिक्त किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण ने भी समीक्षा याचिका को गलत तरीके से खारिज कर दिया, जिसके तहत यह उनके ध्यान में लाया गया था कि प्रत्यर्थी नंबर 1 की मां, जो कथित रूप से परिसर में रह रही थी, वास्तव में, अतिरिक्त किराया नियंत्रक के समक्ष बेदखली याचिका के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी। चरखी दादरी में उनकी मृत्यु हो गई थी और चरखी दादरी में उनका अंतिम संस्कार किया गया था। चरखी दादरी से मकान मालकिन द्वारा प्राप्त उसका मृत्यु प्रमाण पत्र स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विद्वान अतिरिक्त किराया नियंत्रक द्वारा दिया गया निष्कर्ष कि वह विचाराधीन परिसर में नहीं रह रही थी, वास्तव में सही खोज थी और इस बाद की घटना ने उन निष्कर्षों की पुष्टि की। इसलिए विद्वान अतिरिक्त किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण गलत तरीके से विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचा।

37.9 ये सभी इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीशों के निर्णय हैं और पूरे सम्मान के साथ, मेरा विचार है कि दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 (1) के तहत अपील में हस्तक्षेप के मामले में परिनिरीक्षण के सिद्धांत को, इसमें निर्धारित

किया गया है, अभिव्यक्ति "विधि के सारवान प्रश्न" की समझ के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जैसा कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय में निहित है। जैसा कि ***विजय दशरथ पटेल***[29] मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में निहित है, इस स्पष्ट सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए कि अभिव्यक्ति "विधि का प्रश्न" अभिव्यक्ति "विधि का पर्याप्त प्रश्न" की तुलना में अपने दायरे में व्यापक होगी।

38. इसलिए, यह प्रश्न कि क्या कि.नि.अधि. का आक्षेपित निर्णय हस्तक्षेप के योग्य है, सबसे पहले, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 द्वारा इस न्यायालय में निहित प्रतिबंधित क्षेत्राधिकार और दूसरा, दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38(1) द्वारा कि.नि.अधि. में निहित क्षेत्राधिकार के दायरे को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना चाहिए। निश्चित रूप से, इस न्यायालय को वर्तमान कार्यवाही में, विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों को टूथकॉम्ब के साथ जांचना उचित नहीं होगा, जैसे कि वह पहली बार साक्ष्य की सराहना कर रहा हो।

39. यद्यपि आक्षेपित निर्णय में विद्वान कि.नि.अधि. द्वारा विधि का कोई प्रश्न तैयार नहीं किया गया है, विद्वान कि.नि.अधि. ने विद्वान अति.कि.नि. के निर्णय को उस तरीके स्पष्ट रूप से गलत माना है जिस तरह से इसने न्यायालय के समक्ष साक्ष्य की सराहना की और एक बिंदु पर, विद्वान अति.कि.नि. के निर्णय को "दुराग्रह" के रूप में भी चिह्नित किया है।

40. न्यायालय को इस बात की जांच करनी है कि जिस तरीके से उसने ऐसा करना चुना है, उस तरीके से विद्वान अति.कि.नि. के निर्णय को उलटने में, विद्वान कि.नि.अधि ने दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 38 (1) द्वारा निहित क्षेत्राधिकार को पार कर लिया है।

41. श्री नायर का तर्क यह है कि आक्षेपित निर्णय, थोक में, मामले में उपलब्ध सबूतों की पुनः सराहना करता है, जो कि धारा 38(1) द्वारा पूरी तरह से प्रतिबंधित है।

42. विधि के प्रतिपादन के रूप में, और ***विजय दशरथ पटेल***[29] मामले में उच्चतम न्यायालय को ध्यान में रखते हुए, मैं श्री नायर से सहमत होने में असमर्थ हूं। विद्वान कि.नि.अधि. ने इस बात को रेखांकित किया है कि उनकी राय में, विद्वान अति.कि.नि. ने साक्ष्यों की सराहना करने के तरीके में स्पष्ट त्रुटियां क्या थीं। यदि, उस संबंध में, कि.नि.अधि. ने स्पष्ट रूप से गलती नहीं की है, तो मामला भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तक्षेप के योग्य नहीं होगा।

43. इस पृष्ठभूमि के साथ, एक बार फिर यह ध्यान देना फायदेमंद होगा कि वर्तमान मामले में विद्वान कि.नि.अधि. ने किस आधार पर विद्वान अति.कि.नि. के निर्णय को पलटना उचित समझा है।

44. विद्वान अति.कि.नि. के निष्कर्ष के अनुसार, हरबंस लाल मेहरा ने दिसंबर 1987 में अपनी प्रवृत्ति को आत्मसमर्पण कर दिया था, जिसके बाद, जनवरी 1988 में, राज कुमार गुप्ता को माधो द्वारा प्रत्यक्ष किरायेदार के रूप में शामिल किया गया था, विद्वान कि.नि.अधि. ने इस प्रकार अनुपालन किया:

i. यह व्यावहारिक ज्ञान के अनुरूप नहीं था कि हरबंस लाल मेहरा, जिन्होंने 51 वर्षों से अधिक समय तक किरायेदार के रूप में किराए के परिसर पर कब्जा कर रखा था, बिना किसी आर्थिक लाभ या लाभ के अपनी प्रवृत्ति को छोड़ देंगे।

ii. कोई समर्पण विलेख आगामी नहीं था।

iii. किरायेदारी के अभ्यर्पण की कोई सटीक तारीख आगामी नहीं थी।

iv. यहां तक कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर संशोधित लिखित बयान में भी हरबंस लाल मेहरा द्वारा किरायेदार परिसर की चाबी माधो को सौंपने का कोई संदर्भ नहीं था। इस तथ्य का उल्लेख पहली बार प्रति.सा.-1 के जिरह में किया गया।

v. ₹ 9600/- के अग्रिम वार्षिक किराए या ₹ 50,000/- की सुरक्षा के कथित भुगतान का कोई सबूत नहीं था, जो कि राज कुमार गुप्ता द्वारा माधो को भुगतान किया गया था। माधो ने ऐसे किसी भी भुगतान के अस्तित्व से स्पष्ट रूप से इनकार किया। याचिकाकर्ता के इस तर्क का समर्थन करने के लिए एकमात्र सबूत याचिकाकर्ता का अपना बयान और प्रति.सा.-2 और प्रति.सा.-3 के बयान थे, जिनमें से प्रति.सा.-2, विद्वान अति.कि.नि. के अनुसार भी, एक अविश्वसनीय गवाह था, क्योंकि वह माधो के प्रति पक्षपाती था।

vi. याचिकाकर्ता द्वारा दायर मूल लिखित बयान में इन बातों को कोई जगह नहीं मिली। उन्हें मूल लिखित विवरण में अनुच्छेद (4क) से (4ज) अंतस्थापित करके संशोधन के माध्यम से पुरःस्थापित किया गया था। संशोधनों को स्वयं बिना किसी पूर्वाग्रह के ही अनुमति दी गई थी। इसलिए, याचिकाकर्ता के लिए इन दलीलों को साबित करना था और अपने स्वयं के बयान और प्रति.सा. -2 और प्रति.सा. -3 के बयानों को छोड़कर, उस अंत तक कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था।

vii. इस बात का कोई साक्ष्य नहीं था कि राज कुमार गुप्ता या याचिकाकर्ता द्वारा माधो को कोई किराया दिया गया था, क्योंकि वे कथित तौर पर उसके अधीन सीधे किरायेदार बन गए थे।

viii. यहां तक कि प्रति.सा.-1 के रूप में अपनी गवाही में, कि उसने सीधे उसके अधीन किरायेदार बनने के बाद माधो को किराए का भुगतान किया था,

याचिकाकर्ता ने बाद में स्वीकार किया कि, लेखा पुस्तकों में, किराए का ऐसा भुगतान 1995 के बाद ही परिलक्षित हुआ था।

ix. लेखा पुस्तक को स्वयं साक्ष्य में कभी प्रस्तुत नहीं किया गया था।

x. इस प्रकार, कम से कम 1995 तक माधो को राज कुमार गुप्ता या याचिकाकर्ता द्वारा किराए के भुगतान का संकेत देने के लिए कोई सामग्री नहीं थी।

xi. किसी ने भी टालने की कोशिश नहीं की, और यह इंगित करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि माधो ने कभी राजकुमार गुप्ता या याचिकाकर्ता से किराए की मांग की थी।

xii. यह इंगित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं था कि दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 26 के तहत राज कुमार गुप्ता या याचिकाकर्ता द्वारा विद्वान अति.कि.नि. के पास किराया जमा किया गया था।

xiii. आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 143(1) के तहत, वर्ष 1986, 1987 और 1988 के लिए भी मूल्यांकन आदेश राज कुमार गुप्ता को दुकान संख्या 829 पर जारी किए गए थे, न कि किराए के परिसर के पते पर जारी किए गए थे। वर्ष 1988 के मूल्यांकन आदेश में, अंक "8" को स्कोर किया गया था और इसके स्थान पर, अंक "7" डाला गया था, ताकि 1988 के बजाय "1987" पढ़ा जा सके।

xiv. यहां तक कि किराए के परिसर के सामने चबूतरे के संबंध में भुगतान के लिए एमसीडी की दिनांक 24 मार्च 1989 की रसीद भी "हरबंस लाल दौलत राम" के नाम पर जारी की गई थी।

xv. याचिकाकर्ता ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिए हरबंस लाल मेहरा के परिवार से किसी को भी गवाह के कठघरे में लाने की मांग नहीं की।

xvi. हरबंस लाल मेहरा की बहनों द्वारा उनके खिलाफ इस न्यायालय के समक्ष शुरू की गई लंबित विभाजन कार्यवाही में, हरबंस लाल मेहरा की पत्नी सुशीला मेहरा ने 19 जुलाई 1988 को एक आवेदन दायर किया था, जिसमें पहले दायर किए गए आवेदन में हरबंस लाल मेहरा के स्थान पर खुद को प्रतिस्थापित किया गया था। हरबंस लाल मेहरा द्वारा 10 जुलाई 1987 को उक्त मुकदमे में, या तो किराए के परिसर को किराए पर देने या उसे अपने व्यवसाय को जारी रखने के लिए किसी तीसरे पक्ष में शामिल होने की अनुमति देने की मांग की गई थी। इससे संकेत मिलता है कि, कम से कम जुलाई 1988 तक, हरबंस लाल मेहरा और, उनके बाद, उनके विधिक प्रतिनिधि, किरायेदार परिसर के संबंध में किरायेदारी अधिकारों का दावा कर रहे थे।

xvii. यहां तक कि इस न्यायालय के समक्ष हरबंस लाल मेहरा की वसीयत के निष्पादक जे.के. मेहरा द्वारा दायर प्रोबेट याचिका में भी, वसूली योग्य संपत्ति में किराए का परिसर शामिल था।

xviii. पी.एन. श्री तिवारी, अधिवक्ता ने पत्र दिनांक 25 अगस्त 1988 को संबोधित किया, जिसके तहत किराए पर लिए गए परिसर के संबंध में 1 दिसंबर 1987 से 31 अक्टूबर 1988 की अवधि के लिए किराए का भुगतान किया गया था।

45. इस तथ्य के मद्देनजर कि याचिकाकर्ता के इस तर्क को साबित करने के लिए कोई लिखित दस्तावेज नहीं था कि हरबंस लाल मेहरा ने किरायेदार परिसर के संबंध में अपनी प्रवृत्ति को आत्मसमर्पण कर दिया था और, अगले रविवार को, किराए का परिसर सीधे राज कुमार गुप्ता को किराए पर दे दिया गया था, या प्रतिनियुक्ति पर राज कुमार गुप्ता ने ₹ 50,000/- की सुरक्षा के साथ ₹ 9600/- का वार्षिक किराया भुगतान किया था, और याचिकाकर्ता द्वारा उप-किरायेदारी के आरोप का बचाव करने के लिए रखी गई इस पूरी कहानी को केवल उसके अपने बयान और प्रति. सा. -2 के बयान से पुष्ट करने की मांग की गई थी, विद्वान कि.नि.अधि. का विचार था कि विद्वान अति.कि.नि. का निष्कर्ष, यह कि माधो उप-किराएदारी के आरोप को स्थापित करने में विफल रहा था और दूसरी ओर, याचिकाकर्ता यह साबित करने में सफल रहा था कि उसके पिता राज कुमार गुप्ता माधो के तहत प्रत्यक्ष किरायेदार थे, स्पष्ट रूप से दुराग्रहपूर्ण था।

46. जिस तरह से विद्वान कि.नि.अधि. ने साक्ष्य पर विचार किया है, साथ ही विद्वान अति.कि.नि. द्वारा साक्ष्य की सराहना, किसी भी दुराग्रहता से ग्रस्त नहीं है, ताकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को उचित ठहराया जा सके। दूसरी ओर, तरीके को देखते हुए इससे पहले उद्धृत निर्णयों में, मुख्य रूप से ***विजय दशरथ पटेल***[29], विधि के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के अस्तित्व के संबंध में किस "दुराग्रहता" को समझा गया है, यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान कि.नि.अधि. ने जिस तरीके से साक्ष्यों को निपटाया है, उसे व्यवहार में लाने में विधिी रूप से स्पष्ट रूप से गलती की है, और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उप-किराए पर देने का आरोप माधो द्वारा सिद्ध नहीं किया गया था, जो कि दुराग्रह है।

47. यद्यपि, इस प्रकार, यह सच है कि विद्वान कि.नि.अधि. ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया है, उक्त पुन: मूल्यांकन मुख्य रूप से यह प्रदर्शित करने के प्रयोजनों के लिए है कि जिस तरीके से विद्वान अति.कि.नि. ने मूल रूप से साक्ष्य की सराहना की वह विधि में समझे गए अनुसार दुराग्रह था। विद्वान कि.नि.अधि. के उस निष्कर्ष को अपने आप में दुराग्रह नहीं माना जा सकता है, या अन्यथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 द्वारा इस न्यायालय में निहित अधिकार क्षेत्र के सीमित मापदंडों के भीतर हस्तक्षेप करने योग्य नहीं है।

48. समान रूप से, इस न्यायालय के लिए, अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 111(च) या दि.कि.नि अधिनियम की धारा 16, 17 और 18 पर आधारित विद्वान कि.नि.अधि. के नतीजों में गड़बड़ी करने का कोई अवसर उत्पन्न नहीं होता है। यह तथ्य कि याचिकाकर्ता का किरायेदारी परिसर पर कब्जा पाया गया, विवाद में नहीं है। इस मामले की तुलना उस मामले से नहीं की जा सकती है, जिसमें उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो एक ही स्थान पर, एक दुकान में बैठा हुआ पाया गया था, बिना किसी और चीज के, उप-किरायेदार होने का आरोप लगाया जा रहा था। वर्तमान मामले में, हरबंस लाल मेहरा को छोड़कर, न केवल याचिकाकर्ता के पास किरायेदारी परिसर का विशेष कब्ज़ा था; याचिकाकर्ता के पास इस तरह के कब्जे के लिए कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं था, माधो के तहत सीधे किरायेदारी का मामला कीमती छोटी सामग्री पर आधारित था। इन परिस्थितियों में, विद्वान कि.नि.अधि. को यह कहते हुए कार्य करने के लिए नहीं ठहराया जा सकता है कि याचिकाकर्ता हरबंस लाल मेहरा के अधीन एक उप-किरायेदार था, और माधो के अधीन प्रत्यक्ष किरायेदार नहीं था जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को उचित ठहराएगा।

निष्कर्ष

49. इसलिए, मुझे कि.नि.अधि. संख्या 30244/2016 में विद्वान कि.नि.अधि. के दिनांक 6 जनवरी 2022 के आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता है। इसलिए, निर्णय को पूरी तरह से बरकरार रखा जाता है।

50. नतीजतन, परिणामस्वरूप, वर्तमान याचिका गुणहीन होने के कारण खारिज की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

<u>सि.वि.(मु.) 356/2022</u>

51. सि.वि.(मु.) 356/2022 के विरुद्ध निर्देशित किया जाता है

(i) विद्वान किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण ("विद्वान कि.नि.अधि.") द्वारा पारित आदेश दिनांक 12 अप्रैल 2022, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर एक आवेदन, जो विद्वान कि.नि.अधि. द्वारा दिनांक 6 जनवरी 2022 के निर्णय को वापस लेने की मांग कर रहा था, खारिज कर दिया गया और

(ii) निष्पादन न्यायालय के रूप में विद्वान अति.कि.नि. द्वारा पारित आदेश दिनांक 13 अप्रैल 2022, जिसके तहत निष्पादन 208/2022 में

सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 26(1)38 के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर एक आवेदन खारिज कर दिया गया था।

<u>दिनांक 12 अप्रैल 2022 के आदेश को चुनौती</u>

52. कि.नि.अधि. 30244/2016 में विद्वान कि.नि.अधि. द्वारा पारित 6 जनवरी 2022 के निर्णय को याचिकाकर्ता द्वारा सि.वि.(मु.) 355/2022 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे आज दिए गए निर्णय से खारिज कर दिया गया है। विद्वान कि.नि.अधि. के 6 जनवरी 2022 के निर्णय को वापस लेने का आवेदन विचार के लिए बाकी नहीं रहेगा। तदनुसार, जिस हद तक वर्तमान याचिका विद्वान कि.नि.अधि. द्वारा पारित 12 अप्रैल 2022 के आदेश को चुनौती देती है, चुनौती को निरर्थक बना दिया गया है और इस तरह इसका निपटारा किया जाता है।

<u>दिनांक 13 अप्रैल 2022 के आदेश को चुनौती</u>

53. वर्तमान याचिका में सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 26 के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर एक आवेदन में कार्यकारी न्यायालय के रूप में विद्वान अति.कि.नि. द्वारा पारित 13 अप्रैल 2022 के आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसमें पूर्व में पारित 6 जनवरी 2022 के निर्णय पर रोक लगाने की मांग की गई

है। कि.नि.अधि. 30244/2016 में विद्वान कि.नि.अधि. द्वारा, ताकि याचिकाकर्ता को 6 जनवरी 2022 के उक्त निर्णय के खिलाफ आगे के उपायों का लाभ उठाने में सक्षम बनाया जा सके। निष्पादन न्यायालय के रूप में विद्वान अति.कि.नि. ने दो आधारों पर आवेदन को खारिज कर दिया है। पहला यह है कि विद्वान कि.नि.अधि. ने 6 जनवरी 2022 के निर्णय में उक्त कि.नि.अधि. की अनुमति देते हुए 4 अप्रैल 2022 को कि.नि.अधि. 30244/2016 में दिए गए पहले के स्थगन को हटा दिया। पदानुक्रमित रूप से निचले न्यायिक प्राधिकारी के रूप में विद्वान अति.कि.नि. ने यह विचार व्यक्त किया है कि 6 जनवरी 2022 के निर्णय के संचालन पर कोई भी रोक न्यायिक अनुशासन के लिए विध्वंसक होगी।

54. मैं खुद को इस दृष्टिकोण से सहमत पाता हूं। एक बार जब न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपील में चुनौती दी जाती है, और अपील की अनुमति दी जाती है, तो सि.प्र.सं. का आदेश XXI नियम 26 लागू नहीं होता है। आदेश XXI नियम 26 को स्पष्ट रूप से पढ़ने से पता चलता है कि यह उस स्तर पर लागू होता है जब एक निर्णीत ऋणी, एक डिक्री का सामना करने के बाद, अपीलीय न्यायालय के समक्ष निर्णय और डिक्री को चुनौती देना चाहता है। ऐसी परिस्थितियों में, निर्णित ऋणी को यह अनुमति प्राप्त है कि वह उस निर्णय और डिक्री को पारित करने वाले न्यायालय या निष्पादन न्यायालय को निर्णय और

डिक्री के प्रवर्तन पर तब तक रोक लगाने के लिए प्रभावित कर सकता है, जब तक कि उसके खिलाफ अपील करने के लिए उपलब्ध परिसीमा की अवधि समाप्त नहीं हो जाती। यह स्पष्ट रूप से इसलिए है क्योंकि निष्पादन न्यायालय पदानुक्रमित रूप से उस न्यायालय के बराबर होगा जिसने निर्णय और डिक्री पारित की थी।

55. हालाँकि, जहाँ अपील में एक निर्णय और डिक्री को चुनौती दी जाती है और उसे बरकरार रखा जाता है, तो निष्पादन न्यायालय पदानुक्रम में उस न्यायालय के बराबर होगा जिसने निर्णय और डिक्री पारित किया है, लेकिन प्रभावी रूप से लगाई गई रोक एक श्रेणीबद्ध रूप से श्रेष्ठ न्यायालय द्वारा अपील में पारित आदेश के आधार पर होगी। विद्वान अति.कि.नि. अपने विचार में बिल्कुल सही है कि, ऐसी स्थिति में, निष्पादन न्यायालय संभवतः पदानुक्रमिक रूप से श्रेष्ठ अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संचालन पर रोक नहीं लगा सकता है। यह स्पष्ट रूप से इस कारण से है कि सि.प्र.सं. किसी निर्णय और डिक्री को अपील में चुनौती दिए जाने के बाद किसी निर्णय और डिक्री के संचालन पर रोक लगाने की मांग करने वाले किसी भी आवेदन का प्रावधान नहीं करता है।

56. जैसा कि विद्वान अति.कि.नि. ने 13 अप्रैल 2022 के आदेश में सही ढंग से देखा है, इस तरह की रोक की मांग केवल उस न्यायालय से की जा सकती है जो पदानुक्रम में प्रथम अपीलीय न्यायालय से श्रेष्ठ है।

57. तदनुसार, सि.वि.(मु.) 356/2022, जिस हद तक यह 13 अप्रैल 2022 के आदेश को चुनौती देता है, गलत है और तदनुसार खारिज कर दिया जाता है।

58. किसी भी स्थिति में, विद्वान कि.नि.अधि. का दिनांक 6 जनवरी 2022 का निर्णय मेरे द्वारा आज सि.वि.(मु.) 355/2022 में पारित और दिए गए निर्णय द्वारा बरकरार रखा गया है, इसलिए, सि.वि.(मु.) 356/2022 में कोई और आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है।

न्या., सी. हरिशंकर

जुलाई 3, 2023
एआर

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वे अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*